मंघाराम मल्काणी

अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य है, जिसमें तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ-रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे है । उनके नीचे बैठा है मुंशी जो व्याख्या का दस्तावेज लिख रहा है । भारत में लेखन-कला का यह सम्भवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख है ।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली

भारतीय साहित्य के निर्माता

मंघाराम मल्काणी

लेखक

ए. जे. उत्तम

अनुवादक

राधाकिशन चांदवाणी

साहित्य अकादेमी

Mangharam Malkani (मंघाराम मल्काणी) : Hindi translation by Radhakrishan Chandwani of A. J. Uttam's monograph in Sindhi.

Sahitya Akademi, New Delhi SAHITYA AKADEMI REVISED PRICE Rs. 15-00

First Edition : 1991

Published by :

Sahitya Akademi

Head Office :
Rabindra Bhavan, 35, Ferozeshah Road, New Delhi 110 001
Sales Department :
Basement in 'Swati', Mandir Marg, New Delhi 110 001

Regional Offices :
172 M. M. G. S. Marg, Dadar (East), Bombay - 400 014
Jeevan Tara, 23A/44X, Diamond Harbour Road, Calcutta 700 053
29, Eldams Road, Teynampet, Madras - 600 018.

ISBN 81-7201-031-1

Printed by :
New Radharaman Printing Press 20, Wadala Udyog Bhavan
Wadala, Bombay - 400 031

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

अनुक्रमणिका

अध्याय - 1
बाल्यावस्था एवं विद्यालय जीवन

प्रोफ़ेसर मंघाराम मल्काणी आधुनिक सिन्धी एकांकी के उन्नायक थे। उन्होंने साहित्य की इस शाखा को पूरे पचास वर्षो तक पालपोस कर एक फलदार वृक्ष बनाया। उन्होंने लगभग पचास छोटे नाटक लिखे। इतने एकांकी किसी अन्य सिन्धी लेखक द्वारा नहीं लिखे गए हैं। प्रोफेसर मल्काणी ने नाट्य-अभिनय, निर्देशन और वर्गीकरण (classification) के जरिए सिन्धी रंगमंच को उन्नत किया। वास्तव में वे आधुनिक सिन्धी गद्य के एक निर्माता थे। सिन्धी नाटक के अतिरिक्त साहित्यिक इतिहास, आलोचना और निबन्ध की विधाओं को भी उन्होंने समृद्ध किया, साथ ही सिन्धियत आंदोलन का भी मार्गदर्शन किया।

प्रोफेसर मल्काणी ने जिस समय इस संसार में आँख खोली, उस समय उन्नीसवीं शताब्दी अन्तिम सांसें ले रही थी। देश में अंग्रेज़ी राज्य की जड़ें मज़बूत हो चुकी थीं। चारों तरफ़ अंग्रेज़ी भाषा और शिक्षण, सभ्यता और संस्कृति का बोलबाला था। अंग्रेज़ों को सिन्ध - विजय किए अर्ध शताब्दी हो चुकी थी। उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा और शिक्षा के प्रचार - प्रसार के साथ-साथ सिन्धी भाषा के प्रचार-प्रसार और उसकी लिपि सुधारने तथा उसे परिनिष्ठित करने के लिए भी उचित कदम उठाए एवं शैक्षिक तथा साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित करवायीं। इसी प्रकार उस समय पढ़े - लिखे वर्ग में जहां अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रति उत्साह था, वहीं सिंधी भाषा और साहित्य के लिए भी रूचि उत्पन्न हो रही थी, जिनका अभी विकास ही हो रहा था। प्रोफेसर मल्काणी पर उस दोहरी लहर का पूरा - पूरा प्रभाव हुआ था। एक से वे अंग्रेज़ी के ज्ञाता बने तो दूसरी से उच्चकोटि के सिन्धी साहित्यकार।

उनका जन्म 14 दिसम्बर 1896 को हैदराबाद नगर में हुआ था जो सिन्ध का शैक्षिक व साहित्यिक, सभ्यता एवं संस्कृति का केन्द्र था। उनके पिता श्री उधाराम शेवकराम खुदाबादी सामन्त (शक्तिशाली ज़मीदार) थे। यह प्रोफ़ेसर मल्काणी का सौभाग्य था कि वे एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न हुए थे और उनके पिता तथा दादा दोनों बुद्धिमान, स्वेच्छाचारी तथा सहृदय थे। उनकी दादी ने, न केवल अपने पुत्रों को ही, अपितु अपनी दो कन्याओं को भी शिक्षा दिलवाई थी। कहतें हैं कि वे प्रथम दो सिन्धी लड़कियां थीं जिन्होंने अंग्रेजी भाषा का अध्ययन किया था। प्रोफेसर मल्काणी के ज़मींदार पिता शिष्टता प्रिय तथा प्रगतिवादी थे । उन्होंने विवाह भी उस लड़की से ही किया था जिस पर मोहित थे और स्वयं ही जाकर उन्होंने उसे अंगूठी पहना दी थी। तत्पश्चात तो दोनों के माता-पिता ने भी स्वीकृति दे दी थी।

प्रोफ़ेसर मंघाराम उनके ज्येष्ठ पुत्र थे। उनका एक छोटा भाई आलमचन्द था तथा गुड्डी नामक उनकी एक बहन भी थी। दस बारह वर्षों बाद उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। उस स्त्री से उन्हे फिर चार लड़कियां और एक लड़का हुए थे। उस सौतेली मां से होने वाली खटपट का प्रोफ़ेसर मल्काणी के गृह जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा दिखाई देता है। इसी कारण वे प्रथम पत्नी से सन्तान होने की स्थिति में दूसरे विवाह का

विरोध करते थे ।ऐसा उनके कुछ नाटकों और आत्म-कथा से संबंधित लेखों से भी पुष्ट होता है। शायद सौतेली मां द्वारा की जाने वाली खटपट ही इसका एक मुख्य कारण हो, जिस से कि कालेज की पढ़ाई के मध्य में ही उनका विवाह, एक अधिकारी श्री कानसिंह साहिबसिंह जगत्याणी की पुत्री के साथ कर दिया गया था।

उनके पिता की मृत्यु के बाद सौतेले भाई मोती ने सम्पत्ति की बात पर झगड़ा किया तथा बात कोर्ट तक पहुंच गयी, लेकिन वह केस हार गया। प्रोफ़ेसर मल्काणी की तो सम्पत्ति में कोई रूचि थी नहीं, लेकिन उनके छोटे सहोदर आलमचन्द की थी।

प्रोफेसर मल्काणी ने विद्यालयीन शिक्षा हैदराबाद के एक बड़े विद्यालय 'गवर्नमेंट हाईस्कूल' में प्राप्त की। यह विद्यालय उनके घर के पास ही था। वहां उन पर दो अध्यपकों का विशेष प्रभाव पड़ा जैसा कि उन्होंने स्वयं ही अपनी पुस्तक ''साहित्यकारनि जूं स्मृत्यूं'' (साहित्यकारों की स्मृतियां) में लिखा है। उन दोनों अध्यापकों को उन्होंने ''आदर्शी उस्ताद'' (आदर्श अध्यापक) से सम्बोधित किया है। उनमें से एक थे श्री नाना गुलाम अली, जो उन्हें द्वितीय कक्षा में पढ़ाते थे और दूसरे थे श्री वलीराम आइलमल थधाणी, जिन से वे चौथी और छठी कक्षा में पढ़े थे। ये दोनों उस समय की परिपाटी के अनुसार अन्य अध्यापकों की तरह मार-पीट पर ज़ोर देने की बजाय विद्यार्थियों के साथ प्यार और सहानुभूति के व्यवहार पर अधिक बल देते थे। पहले अध्यापक ने उन्हें अंग्रेज़ी भाषा सही ढंग से बोलना सिखायी और अंग्रेज़ी साहित्य के प्रति रूचि जागृत की। साथ ही वस्त्रों की स्वच्छता व अनुरुपता पर भी विशेष ध्यान आकर्षित किया। प्रोफ़ेसर मल्काणी के शब्दों में- ''नाना साहब का रहन-सहन प्रायः हिन्दुओं के साथ था, इस कारण मुस्लिम भाई उन्हें हिन्दू परस्त होने का ताना देते थे। पर यह सिंह-पुरुष इस बात पर कोई ध्यान नहीं देते थे।''

दूसरे अध्यापक श्री वलीराम के सानिध्य से एक ओर तो उनके मन में गाने और क्रिकेट के लिए रुचि उत्पन्न हुई तो दूसरी ओर बहुत सी कहानियां सुनकर तथा उपन्यास खरीदकर पढ़कर उन्होंने पुस्तक लिखना भी सीखा। इस सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर मल्काणी स्वयं लिखते हैं कि एक बार उन्होंने अपने अध्यापक से अंग्रेज़ी उपन्यास की सुनी हुई कहानी के आधार पर एक सिन्धी उपन्यास के एक अध्याय के 25 पृष्ठ लिखकर उन अध्यापक जी को जाकर दिखाए तो उन्होंने वे सब पृष्ठ फाड़ दिए और कहा ''उपन्यास ऐसे नहीं लिखे जाते। सर्वप्रथम सिन्धी भाषा की बहुत सी पुस्तकें पढ़ो और अपने रिश्तेदारों तथा इष्ट मित्रों को सिन्धी में पत्रादि लिखो। साथ - साथ सरल अंग्रेजी भाषा के उपन्यास पढ़ना आरंभ करो ...जब कालेज में जाओ तब किसी मनपसंद अंग्रेजी उपन्यास का सिन्धी भाषा में अनुवाद करना ...।'' वास्तव में प्रोफ़ेसर मल्काणी ने कालेज में प्रवेश लेने के बाद 'रेनालड्स' के उपन्यास का सिन्धी भाषा में अनुवाद कर ''गुमु थियल सिन्दूकड़ी'' (खोई हुई सन्दूकची) के नाम से प्रकाशित किया।

उस समय विद्यालय जीवन में इन दो अध्यापकों के अतिरिक्त प्रोफ़ेसर मल्काणी पर कुछ अन्य बड़े व्यक्तित्त्वों का भी प्रभाव पड़ा। उनके घर में दो बुआएं रहतीं थीं, जिन्हें साधु हीरानन्द और ऋषि दयाराम गिदूमल ने घर पर ही अंग्रेज़ी और संस्कृत पढ़ाकर योग्य बनाया था। दीवान कौड़ोमल जो उनके पिता के घनिष्ट मित्र थे और घर के पास

ही रहते थे, वे अपनी युवा पुत्रियों को साथ लेकर प्रायः शाम के समय प्रोफ़ेसर मल्काणी के घर आया करते थे। उनकी ये दोनों पुत्रियां प्रोफ़ेसर मल्काणी की उन बुआओं के साथ अंग्रेज़ी में वार्तालाप किया करती थीं। शब्दकोष निर्माता श्री परमानन्द मेवाराम प्रोफेसर मल्काणी के मौसेरे भाई थे तथा उनके मित्र भी । हर दूसरे चौथे दिन उनके घर आते रहते थे। उनके ननिहाल के पास ही काका भेरूमल महरचन्द आडवाणी का घर था जो उनके नाना के चचेरे भाई थे। वे प्रोफ़ेसर मल्काणी के साथ बहुत प्यार से बातचीत किया करते थे।

उनके बचपन के मित्र प्रोफ़ेसर-झमटमल भावनाणी के कथनानुसार- 'अपने घर के पास ब्रह्मसमाज मन्दिर के प्रसिद्ध भगत श्री रूपचन्द के गीत सुनकर प्रोफ़ेसर मल्काणी मन्त्र मुग्ध हो जाया करते थे।' वास्तव में उनकी सुरीली आवाज़ और सुन्दर छबि के कारण ही नाटकों में अभिनय करने का अवसर उन्हें कक्षा छः में पढ़ते समय ही मिला था। उस समय 'हीरोइन' का रोल उन्होंने बड़ी निपुणता से निभाया था। इस प्रकार विद्यालयीन जीवन में ही उन्होंने नाटक कला में अपनी योग्यता सिद्ध कर दी थी। साथ ही उन्होंने गम्भीर साहित्यकार तथा एक प्रकाण्ड विद्वान के गुण भी उक्त हस्तियों से प्राप्त किए थे।

उस समय के विद्यालय जीवन की अन्तिम साहित्यिक गतिविधि, जिसने प्रोफ़ेसर मल्काणी की साहित्यिक सूझबूझ में वृद्धि की, वह था भाई लालचन्द अमरडिनोमल और श्री जेठमल परसराम की ओर से आरम्भ की गई प्रथम 'सिन्धी साहित सोसायटी' (सिन्धी साहित्य समिति) का उद्‌घाटन समारोह । उस समिति की ओर से कई वर्षों तक सिन्धी में एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता रहा था। उस उद्‌घाटन समारोह की अध्यक्षता सिन्धी गद्य लेखक मिर्ज़ा कलीच बेग ने की थी तथा उन्होंने सिन्धी भाषा में ही भाषण दिया था। प्रोफ़ेसर मल्काणी पर उस भव्य समारोह का जो प्रभाव पड़ा, उसका वर्णन करते हुए उन्होंने अपनी स्मृतियों में लिखा है, "...समारोह 'होमस्टेड' हाल में बड़े ही भव्य स्तर पर आयोजित हुआ, जहां सिन्धी भाषा से प्यार करने वाले सैकड़ों लोग आकर इकट्ठा हुए थे.. मिर्ज़ा कलीच बेग ने सिन्धी शेर (कविता) पर विद्वत्तापूर्ण लेख पढ़ा ... उन दिनों अंग्रेज़ी में बात करने का रिवाज़ इतना बढ़ा हुआ था कि सिन्धी लोगों से, सिन्धी में बात करना ही मानों विस्मृत सा हो गया था। सभाओं में बड़े - बड़े विद्वान भी प्रायः अंग्रेज़ी में ही भाषण दिया करते थे और मजबूरन यदि कोई सिन्धी में भाषण देने का प्रयास करता भी था तो अटकते - अटकते आधी संख्या में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग कर, वह काम चला लेता था। पर श्री लालचन्द द्वारा आयोजित इस समारोह में जिन लोगों ने भी भाषण दिए, स्वयं श्री लालचन्द, श्री जेठमल, डॉक्टर चोइथराम, श्री सन्तदास मंघाराम वकील आदि सब ने ठेठ सिन्धी भाषा में ही भाषण दिए। एक भी शब्द अंग्रेज़ी का प्रयुक्त नहीं किया। इस समारोह में सिन्धी साहित्य के प्रति मेरे मन में अगाध प्रेम उत्पन्न हुआ और मैनें मासिक पत्रिका का शुल्क जमा करा दिया।"

इस प्रकार सिन्धी भाषा के यह प्रेमी, अंग्रेज़ी के साधक, गाने, खेल, नाटक और कला के स्नेही युवक प्रोफ़ेसर मल्काणी मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर, कराची आकर डी. जे. सिन्ध कालेज के कला विभाग में दाखिल हुए। इनके पिता श्री उधाराम शेवकराम भी

1886-87 ई. में आरम्भ हुए इस कालेज के प्रथम विद्यार्थियों में से एक थे। प्रोफ़ेसर मल्काणी मैट्रिक की परीक्षा में पूर्ण सिन्ध प्रान्त में चतुर्थ स्थान पर, और अपने विद्यालय में अंग्रेज़ी भाषा तथा इतिहास विषयों में प्रथम रहे थे । इस उपलक्ष में मिले 25=00 रूपये के पुरस्कार में से 17=00 रूपये की पुस्तकें खरीदकर उन्होंने अपना गृह-पुस्तकालय आरम्भ किया, जिसमें प्रतिदिन नई अथवा पुरानी पुस्तकों से वृद्धि कर उसे सुसज्जित करते रहने का प्रयास अन्तिम समय तक वे करते रहे।

अध्याय 2
युवावस्थाँ एँव कालेज जीवन

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने कालेज में प्रवेश लेने के पश्चात विद्यार्थी - राजनिति का अपना संघर्षशील व राष्ट्रीय स्वरुप प्रस्तुत किया जिसे उनके जीवन का एक स्वर्णिम अध्याय कहा जा सकता है। प्रथम विश्वयुद्ध के समय देश में राष्ट्रिय जागरूकता फैलने लगी थी। विशेषतया विदेशी अंग्रज़ों के विरूद्ध विद्यार्थियों में क्रोध भरा हुआ था। अतः जब डी. जे. सिन्ध कालेज के अंग्रेज़ प्रिन्सिपल फैरिल का अकस्मात देहान्त हो गया तो उनके रिक्त स्थान की पूर्ति हेतू कालेज बोर्ड के नियमानुसार दूसरे अंग्रेज़ मिलर को प्रिन्सिपल के रुप में इंग्लैण्ड से बुलवाया गया। इस पर विद्यार्थियों में अत्याधिक असन्तोष छा गया। क्योंकि, कालेज बोर्ड द्वारा एक योग्य तथा वरिष्ठतम भारतीय प्रोफ़ेसर साहिबसिंह शाहाणी के अधिकार की अनदेखी करते हुए एक विदेशी तथा एक नवागत अंग्रेज़ को कालेज का प्रिन्सिपल नियुक्त किया जा रहा था। इस पर विद्यार्थियों ने आपत्ति करते हुए हड़ताल कर दी, जिसका विद्यार्थी - नेता बनाया गया प्रोफ़ेसर मल्काणी को।

उस समय सिन्ध का वह प्रथम कालेज था जहां पर हड़ताल और प्रदर्शन हुए थे। पुलिस का सख़्त पहरा था। सारे शहर में इसकी बहुत चर्चा हुई। इस सम्बंध में प्रोफ़ेसर मल्काणी स्वयं अपनी पुस्तक ''साहित्यकारनि जूं स्मृत्यूं'' (साहित्यकारों की स्मृतियां) में लिखते हैं - ''विद्यार्थियों में अत्यन्त रोष उत्पन्न हुआ कि अनुभवी और योग्य प्रोफ़ेसर शाहाणी साहब को इस पद से क्यों वंचित रखा जा रहा है...? वे सब के ही प्रिय प्रोफ़ेसर थे। अतः एक 'स्ट्राईक - कमेटी' का निर्माण किया गया, जिसका अध्यक्ष मुझे चुना गया। कालेज के पास लॉन पर विद्यार्थियों की मीटींग बुलाई गई जिस में मैंने पहले भाषण में कहा कि -''प्रोफ़ेसर शाहाणी साहब प्रथम सिन्धी एम. ए. पास व्यक्ति हैं और इस समय कालेज में सबसे पुराने और योग्यतम प्रोफ़ेसर हैं। वे ही डी. जे. सिन्ध कालेज के प्रिन्सिपल होने के अधिकारी हैं। इस लिए नये रंगरूट को वापस विलायत रवाना कर देना चाहिए। ऐसा प्रस्ताव सर्व सम्मति से पारित किया गया। दूसरे दिन से कालेज में हड़ताल आरम्भ हो गई और कक्षाएं खाली पड़ी रहीं। शहर में खूब चर्चा होने लगी। श्री जमशेद महता, डॉक्टर चोइथराम या श्री जयरामदास भागे - भागे हमारे पास मेठाराम हॉस्टल में आए और समझाने लगे कि हड़ताल समाप्त कर दो। अन्त में उन्होंने जब यह विश्वास दिलाया कि बोर्ड से गोरे प्रिन्सिपल को नियुक्त किए जाने की बात रद्द करवाई जाएगी, तब हमने अपनी हड़ताल वापस लेली। तत्पश्चात जल्दी ही प्रोफ़ेसर शाहाणी साहब प्रिन्सिपल नियुक्त हो गए। अफ़वाह फैली थी कि बोर्ड के अधिकारीयों ने प्रिन्सिपल शाहाणी पर दबाव डाला था कि हड़ताली नेताओं को कोई सज़ा दी जाए। परन्तु शाहाणी साहब ने उत्तर दिया था कि, 'ज़िन लोगों ने मेरे लाभ के

लिए आन्दोलन किया, मैं उन्हें सज़ा दूं, यह मेरे लिए अस्वाभाविक है।

हड़ताल का योग्यता पूर्वक संचालन कर उसे सफल बनाने से, स्पष्ट है कि प्रोफ़ेसर मल्काणी का मन कालेज के दिनों से ही देश प्रेम और राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत था। वे उस समय में भाई जेठमल परसराम को अंग्रेज़ों के अत्याचारों के कारण उनकी मर्त्सना करने पर हुई जेल की सज़ा भुगतकर जेल से छूटने के पश्चात, उनके स्वागत में निकाले गए भव्य जुलूस में विद्यार्थियों की टोली लेकर सम्मिलित हुए थे। इस में कोई सन्देह नहीं कि यदि उस समय उन्हें विवाह बंधन में न बांधा जाता तो अवश्य ही वे स्वतन्त्रता के उपासक बनते। क्योंकि उस समय ही उन्होंने 'टाई' को एक प्रकार से अंग्रज़ों की दासता का चिन्ह मानकर उसे पहनना छोड़ दिया था और अपनी मातृभाषा सिन्धी के लिए भी प्रेम में बढ़ोतरी की थी।

ऐसा प्रमाण मेठाराम होस्टल में सिन्धी में दिए गए उनके दो भाषणों से भी मिलता है। एक भाषण 'होस्टल डिबेटिंग मण्डली' में और दूसरा प्रोफ़ेसर एल. एच. अजवाणी द्वारा स्थापित 'एक्सटेन्शन मण्डली' में उन्होने दिया था। दोनों मण्डलियों में सिन्धी भाषा में भाषण देने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे। उन्होंने एक्सटेन्शन मण्डली में सिन्धी भाषा के व्यवहार पर अधिक बल देते हुए कहा था '...मेरी आप लोगोंसे प्रार्थना है कि अपनी मातृभाषा को न भुलाएं। उसका अधिकाधिक उपयोग करें। हम देशप्रेम (Patriotism) की डींग तो हांकते हैं, पर इस से पूर्व यदि अपनी मातृभाषा के लिए ही प्यार न रहा, तो देशप्रेम की भावना उपयोगी सिद्ध नहीं होगी... यदि मेरे इस भाषण के सुनने पर किन्हीं लोगों के मन में मातृभाषा के लिए प्रेम जागृत हो सका तो मैं अपने आप को खुशनसीब समझूंगा। और यदि उन्होंने इसकी प्रगति के लिए प्रयत्न किया तो मैं अपना अहो भाग्य समझूंगा।''

लगता है उनके पिता, जो उस समय वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहे थे, चाहते थे कि उनका यह ज्येष्ठ पुत्र अपनी जमींदारी संभाले । इसी कारण बी. ए. पास करने के तुरन्त बाद उन्हें 4-5 वर्ष उसका (जमींदारी का) उत्तरदायित्व उन्हें सौंप दिया गया जो प्रोफ़ेसर मल्काणी ने पूर्ण रूपेण निभाया था। इस जमींदारी के उत्तरदायित्व के अतिरिक्त उनके पिता ने, घर में अपनी दूसरी पत्नी की सन्तान की, अपनी प्रथम पत्नी की सन्ताने (प्रोफ़ेसर मल्काणी तथा उनके भाई और बहिन) से खटपट होती देखी होगी। इस कारण शीघ्र ही कालेज शिक्षा के मध्य में ही उन्होंने प्रोफ़ेसर मल्काणी का विवाह कर दिया। ऐसा यद्यपि प्रोफ़ेसर मल्काणी की इच्छा के अनुकूल नहीं था, तथापि एक आज्ञाकारी पुत्र होने के कारण उन्हें पिताजी की बात माननी पड़ी। क्योंकि उनके नाटकों के अन्तिम संग्रह 'समुंड जी गजिकार' (समुद्र गर्जन) में लिखे उनके समर्पण - पत्र तथा भूमिका से स्पष्ट है कि उनका किसी अन्य सुन्दरी से प्रेम था और उसी से विवाह करने की उनकी मंशा थी। इस संग्रह में उनकी प्रियतमा तथा उनके प्रेम का हूबहू चित्रण है।

प्रोफ़ेसर मल्काणी का जीवन वृत्तान्त जानने के लिए जब बम्बई में उनकी मौसी श्रीमती देवी आडवाणी से मेरी भेंट हुई थी, तब उन्होंने प्रोफ़ेसर मल्काणी के विवाह के समय दहेज के सम्बध में हुई एक नई और विचित्र बात बताई, जो अब तक प्रोफ़ेसर मल्काणी की ढिठाई पूर्ण स्वभाव के कारण हम जैसे निकटतम साहित्यकार मित्रों को भी

ज्ञात नहीं हो सकी थी। उनकी मौसी ने बताया था कि- ''उसके विवाह के समय, परम्परानुसार दहेज में छः हज़ार रुपये लिए गए थे। हां, इसके लिए कोई भी मांग या दबाव नहीं दिया गया था। यह दहेज उसकी बहन गुड्डी के विवाह के समय भी दिया गया था। प्रोफ़ेसर मल्काणी स्वयं इस दहेज के विरुद्ध था। यहां तक कि जब उसके पिता वसीयत कर रहे थे, तब उसने उन्हें कहा कि कृपा करके छः हज़ार रुपये अपनी बहू को दे दें ताकि वह अपने पिता को वापस दे आए। यह दहेज मेरे मन पर बहुत बड़ा बोझ हो रहा है। उसके पिता ने यह बात मानकर छः हज़ार रुपये समधी को वापस भेज दिए थे।''

हमारे यहां आजकल ऐसे बहुत से उदाहरण तो मिल जाएंगे, परन्तु 50-60 वर्ष पूर्व मिलना मुश्किल था। प्रोफ़ेसर मल्काणी ने स्वयं भी अपने दो उच्च शिक्षा-प्राप्त पुत्रों इन्द्रू और सुन्दर के विवाह में भी दहेज नहीं लिया और न ही अपनी बेटी मीना को दहेज दिया। उसे क़ेवल अपनी सम्पति का भाग दिया जो उसके नाम से ही बैंक में रखवा दिया था। उन्होंने इन तीनों का विवाह भी उनकी ही इच्छानुसार किया, न कि जैसे उनके पिता ने प्रोफ़ेसर मल्काणी का विवाह अपनी इच्छानुसार कर दिया था। अपने बच्चों के विवाह प्रोफेसर मल्काणी ने बटवारे के पश्चात बम्बई आकर किए थे।

उस समय यद्यपि युवक अल्पायु में विवाह करते थे तथापि जब प्रोफेसर मल्काणी ने कॉलेज शिक्षा प्राप्त करते हुए विवाह किया तो उनके प्रिय अध्यापक प्रोफ़ेसर साहिब सिंह शाहाणी ने उन्हें भरी कक्षा में बधाई दी थी और साथ-साथ उलाहना भी।

किन्तु प्रोफेसर मल्काणी ने विवाह के पश्चात भी कॉलेज की अपनी गतिविधियों में कोई अड़चन नहीं आने दी। विद्यालय समय की भांति ही कॉलेज में भी शिक्षा के साथ-साथ खेल-कूद, गीत, नाटक और साहित्य सृजन में उन्होंने स्वयं को व्यस्त रखा। कॉलेज में क्रिकेट के बजाय टेनिस में उन्होंने अपनी धाक जमाई, बिलकुल 'चैम्पियन' माने गए तथा कॉलेज की नाटक मण्डली के सेक्रेटरी भी बने। मिर्ज़ा कलीच बेग के नाटक 'नेकी-बदी' में उन्हें चंचल स्वभाव वाली नायिका (स्त्री पात्र) की भूमिका मिली थी। शाह अब्दुल लतीफ़ के '' बैतों '' (दोहों) से प्रभावित होकर उन्होंने सिन्धी में 'बैत' भी लिखने आरम्भ किए। परन्तु उनका साहित्य और नाट्य जीवन, वास्तव में शिक्षा समाप्ति के पश्चात ही आरम्भ हुआ माना जाना चाहिए।

अध्याय 3
जमींदारी का समय

प्रोफेसर मंघराम मल्काणी ने सन् 1919 में बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर उन्होंने कालेज से विदा लेकर पिता के कहे अनुसार उनकी ज़मींदारी सम्माली। इनके जन्म स्थान हैदराबाद के निकट टण्डे मुहम्मद खान में इनके दो खेत थे। जमींदारी का यह समय चार पांच वर्ष चला। उन्होंने उस समय अपने खेतिहरों को कभी तंग नहीं किया। उलटा उनके साथ सहानुभूति का ही व्यवहार किया और उनके अधिकारों का भी ध्यान रखा। यहां तक कि वे अपने पिता, जिन्हें उन्होंने प्रगतिशील जमींदार कहा है, से भी इस दिशा में दो रत्ती अधिक ही निकले, जैसा कि उनके लिखे लघु नाटक 'बटई' (बटाई) से स्पष्ट है। उसमें खेतिहरों की सजगता और उनके अधिकारों की तरफदारी का चित्रण है। वास्तव में उनके पिता ने उन्हें पुणे के कृषि महाविद्यालय में प्रशिक्षण के लिए भी भेजा था और वे वहां कुछ समय शिक्षा प्राप्त कर आए थे।

उस समय में प्रोफेसर मल्काणी को जमींदारी और खेतिहरों के जीवन सम्बन्धी अनुभवों के अतिरिक्त, अकेलेपन में प्राकृतिक दृष्यों के बीच साहित्य सृजन एवं पठन का भी बहुत समय मिला। विशेषतया शाह अब्दुल लतीफ़ और गुरुदेव टैगोर के साहित्य का अध्ययन और अनुवाद करने का भी अवसर मिला। उन्होंने भिट्टाई (स्थान) के शाह के रिसाले (ग्रंथ) में से अनुमानतः सौ बैतों (दोहों) का चयन कर उनका अंग्रेज़ी पद्य में अनुवाद किया। वे दोहे उन्होंने प्रसिद्ध लेखक मिर्ज़ा कलीच बेग को, जिन से कुछ वर्ष पूर्व ही उनकी जान-पहचान हुई थी, देखने के लिए दिए। वे (मिर्ज़ा कलीच बेग) शाह अब्दुल लतीफ के कलाम (रचनाओं) पर एक प्रकार से पूर्ण अधिकार रखते थे। उन्होंने अनुवाद देखकर उन्हें लिखा कि "तुमने भिट्टाई शाह के मूल दोहों (बैतों) के साथ पूर्ण न्याय किया है।" वह अंग्रेज़ी अनुवाद यद्यपि पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हुआ तथापि कुछ दोहे अंग्रेज़ी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे।

प्रोफेसर मल्काणी के कॉलेज में प्रविष्ट होने से कुछ समय पूर्व गुरुदेव टैगोर को 'गीतांजलि' पर नोबल पुरस्कार मिला, तो गुरुदेव रातोंरात स्थान-स्थान पर प्रसिद्ध हो गए थे। अन्य लोगों की भांति सिन्धी विद्वान भी गुरुदेव की स्तुति करने लगे थे। प्रोफ़ेसर मल्काणी के प्रिय अध्यापक श्री साहिबसिंह शाहाणी, कक्षा में टैगोर की गीतांजलि तथा अन्य रचनाओं पर व्याख्यान देते रहते थे। प्रोफेसर मल्काणी पर उसका बहुत प्रभाव हुआ था। जमींदारी के समय प्रोफ़ेसर मल्काणी ने गुरुदेव टैगोर के "गार्डनर" पुस्तक से कुछ गीतों का अनुवाद कर भाई जेठमल की पत्रिका "रूह रिहाण" के सन् 1922 के कुछ अंकों में उन्हें प्रकाशित करवाया था। तत्पश्चात पूरी पुस्तक "गार्डनर" का अनुवाद कर दिया था। इस सम्बन्ध में स्वयं अपनी स्मृतियों में लिखते है :-

"स्नातक होने के बाद चार पांच वर्ष पिता की जमींदारी में जाकर मैं कैद हुआ था। उस अकेलेपन में "गार्डनर" के प्रिय गीत ही मेरे लिए सुन्दर साथी के समान होते थे। विशेषकर जब स्त्री के प्रथम प्यार ने मेरे हृदय को धरती से उठाकर आकाश की ओर अग्रसारित किया था, तब उन्हीं गीतों में समाई सूक्ष्म आत्मिक तड़प मेरे मन में भी सांत्वना की गूंज उत्पन्न करती थी। "गार्डनर" को मैं अपनी गीता समझता था और इसी विचार से मैंने उसका अनुवाद सिन्धी भाषा में "प्रीत जा गीत" (प्रति के गीत) नाम से किया।" *

यह अनुवाद उन्होंने गद्यकाव्य में किया था, जो साठ वर्ष पूर्व सिन्धी भाषा में प्रथम बार हुआ था। उनके दो चार संस्करण निकले हुए हैं और आज भी पढ़ने में रुचिकर हैं। प्रसिद्ध लेखक श्री भेरूमल महरचन्द ने उसकी भूमिका लिखी थी। उन्होंने प्रोफेसर मल्काणी व्दारा किए गए यथार्थ अनुवाद और भाषा की परख करते हुए लिखा था- "उनके (टैगोर के) काव्यमय विचारों को सिन्धी भाषा में प्रस्तुत करने में परिश्रम की आवश्यकता है । श्री मल्काणी इसके लिए यश के भागी हैं जिन्होंने बिना किसी तोड़-मोड़ के, विचारों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया है। अनुवाद की भाषा भी रवि बाबू की काव्यात्मक ढंग की है, जिसे चाहे कोई गद्य या पद्य अथवा दोनों का मेल कहे... ...ऐसी श्रेष्ठ पुस्तकों की सिन्धी भाषा को अत्यन्त आवश्यकता है। **

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने उसी समय में गुरुदेव टैगोर और उनकी बहन घोषाल की एक-एक कहानी भी सिन्धी भाषा में अनुवाद कर प्रकाशित करवाई थी। साथ ही प्रसिद्ध अंग्रेज़ी उपन्यासकार रेनाल्ड का लघु उपन्यास भी 'गुमु थियल सन्दूकड़ी" (खोई हुई सन्दूकची) के नाम से प्रकाशित करवाया था। तात्पर्य यह कि इन अनुवादों से ही प्रोफेसर मल्काणी ने अपनी साहित्यिक यात्रा आरम्भ की थी।

जमींदारी के उस दौर में जहां प्रोफ़ेसर मल्काणी ने साहित्यिक संसार में एक अनुवादक के रूप में कदम रखा, वहीं नाटक के क्षेत्र में तो एक श्रेष्ठ मौलिक कलाकार के रूप में चमक उठे थे। सन् 1920 के समय आधुनिक सिन्धी बृहत नाटक के आरम्भकर्ता श्री ख़ानचन्द दरियाणी ने, जो कालेज में उनके सहपाठी थे, नाटकों के माध्यम से सामाजिक बुराईयों, विशेषकर दहेज जैसी बीमारी का सामना करने के लिए एक "दहेज कमेटी" का निर्माण किया था। उसकी ओर से अपना लिखा नाटक "गुलाब जो गुलु" (गुलाब का फूल) जनता के समक्ष प्रस्तुत किया था। दहेज के विरुद्ध वृहत आधुनिक वास्तविकता दर्शाने वाला वह पहला नाटक था। उस नाटक में सास द्वारा बहू पर अत्याचार और ननद द्वारा अपनी भाभी के साथ दुर्व्यवहार, आदि को इस कदर वास्तविक रूप में दर्शाया गया था कि लोग उससे अत्यन्त प्रभावित हुए थे। नाटक में प्रोफ़ेसर मल्काणी ने नायक के रूप में अभिनय किया था। पुरुष अभिनेता के रूप में यह उनका प्रथम अभिनय था। इस से पूर्व उन्होंने जो भी अभिनय किया था, वह प्रायः स्त्री पात्र के रूप में किया था। नाटक के लेखक श्री दरियाणी ने सतायी हुई बहू का और प्रोफ़ेसर मल्काणी के एक मित्र श्री झमटमल भावनाणी ने सास का अभिनय किया था।

* 'नई दुनिया' पत्रिका, जनवरी 1966. ** "प्रति जा गीत" की भूमिका.

उसके बाद सन् 1923 में श्री ख़ानचन्द के दूसरे नाटक ''मोतिए जी मुखड़ी'' (मोतिए की कली) में भी प्रोफ़ेसर मल्काणी ने नायक के रूप में अभिनय किया था। इस नाटक में ''गुलाब जो गुलु'' नाटक के ठीक विपरीत, बहू का सास पर हावी होना दर्शाया गया था। अपने पति को अपने वश में कर, यह सफलता वह प्राप्त करती है। पति की भूमिका प्रोफेसर मल्काणी ने की थी। यह भूमिका स्वभाव तथा उनकी इच्छा के अनुकूल थी। क्योंकि, वे स्वयं दहेज जैसी कुप्रथाओं के विरुद्ध थे और उन्हें सास द्वारा बहू पर किए जाने वाले अत्याचारों के लिए घृणा थी।

इन नाटकों द्वारा श्री ख़ानचन्द दरियाणी ने सन् 1920 वाले राष्ट्रीय सजगता के समय में, वास्तविक जीवन और सिन्धी समाज का सही रूप दर्शाने वाले आधुनिक वृहत नाटकों के दौर का आरम्भ किया। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विषयों पर आधारित ऐसे 20-25 नाटक लिखे थे, जिन में से आधे मौलिक तथा आधे अनूदित थे। उन में से अधिकांश नाटकों में प्रोफ़ेसर मल्काणी की एक मुख्य भूमिका होती थी। इस लिए जब उपरोक्त दो नाटक लोगों को अत्याधिक पसंद आए तो ऐसे और अधिक नाटकों की मांग बढ़ने लगी। इसके लिए एक नई नाटक संस्था की आवश्यकता अनुभव की गई।

अध्याय 4

गुरुदेव टैगोर से भेंट

श्री ख़ानचन्द दरियाणी ने, प्रोफ़ेसर मंघाराम मल्काणी, श्री लालचन्द अमर डिनोमल, श्री जेठमल परसराम और श्री हीरानन्द आडवाणी के सहयोग से सन्1923में "रविन्द्रनाथ लिट्ररी और ड्रामाटिक क्लब" की स्थापना की। इस संस्था का उद्घाटन गुरुदेव टैगोर ने स्वयं हैदराबाद पधारकर अपने शुभ हाथों से किया था। प्रोफ़ेसर मल्काणी ने उस उत्सव को सफल बनाने के लिए बहुत उत्साह और उमंग के साथ महीना भर अत्यन्त परिश्रम किया था। विशेषकर रूपकों, गीतों व कविताओं का जो कार्यक्रम गुरुदेव के सम्मुख प्रस्तुत किया जाना था, उसकी पूर्ण व्यवस्था का भार प्रोफ़ेसर मल्काणी को सौंपा गया था। यद्यपि वे उस समय खेतों पर थे, तथापि यह उत्तरदायित्व उनकी रूचि के अनुकूल होने के कारण वे इस कार्यक्रम की तैयारी वाले दिनों में हैदराबाद आ कर रहे थे।

जिस जग प्रसिद्ध कवि की कविताओं ने प्रोफ़ेसर मल्काणी के मन को सर्वथा पागल बना दिया था, उस प्रेमपात्र से सम्मुख होने के लिए प्रोफ़ेसर मल्काणी का मन-मयूर गद्-गद् होकर भला क्यों नहीं झूमता तथा उनके आदर-सत्कार के लिए क्यों न आंखे बिछाए बैठता? गुरुदेव का हृदय जीतने के लिए सर्वथा भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों का चयन किया गया था। उन में उनकी कविताओं और नाटक के एक अंश के साथ सिन्धी बोली का एक आनन्ददायी प्रहसन आदि भी सम्मिलित थे। इतना ही नहीं, प्रोफ़ेसर मल्काणी ने स्वयं गुरुदेव के लिखे नाटक तथा अन्य हास्यरसात्मक सिन्धी प्रहसन में भी भाग लिया। उन्होंने इतना स्वाभाविक तथा सजीव अभिनय किया कि गुरुदेव टैगोर ने विशेष रुप से उन्हें अपने पास बुलवाकर प्रशंसा की। प्रोफ़ेसर मल्काणी का परिश्रम सफल रहा, इससे नाटक के क्षेत्र में उनकी लोकप्रियता और महत्ता में भी अतिवृद्धि हुई।

सचमुच यह व्यस्तता प्रोफ़ेसर मल्काणी के जीवन की एक अति महत्त्वपूर्ण तन्मयता थी। वह उनके लिए एक अविस्मरणीय स्मृति बनकर रही। जैसा कि उनके "गुरुदेव सां गडिजाणी" (गुरुदेव से भेंट) वाले लेख से सुस्पष्ट है। वे उसमें लिखते हैं :-

"गुरुदेव टैगोर जैसे महान व्यक्तित्व के सामने सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने के लिए साहस चाहिए था। इसके लिए पूरा महीना, सबेरे से शाम तक अकादेमी हाई स्कूल में हम गहन अभ्यास करते रहे थे। महाकवि के सम्मुख मंच पर प्रस्तुत किए जाने वाले कार्यक्रमों का चयन बड़े ध्यान से किया गया था। जिन में सिन्धी सभ्यता की झलक देने के साथ-साथ स्वयं गुरुदेव टैगोर द्वारा लिखे कुछ अंग्रेजी कार्यक्रम भी सम्मिलित किए गए थे। उनमें से एक विशेष कार्यक्रम था उनके प्रसिद्ध नाटक "चित्रा" का प्रेम प्रदर्शन वाला केन्द्रिय दृश्य, जिस में सन्यासी बनने की शपथ लिया हुआ अर्जुन, जंगल में आखेट खेलती राजकुमारी चित्रा के प्रेम-पाश में बंध जाता है। अर्जुन की भूमिका मैंने

और चित्रा की भूमिका अपने छोटे मित्र टहिलराम आडवाणी ने की थी।

''......अन्ततः वह शुभ दिन आ गया जब महाकवि बंगाल जैसे दूरस्थ प्रदेश से लम्बी यात्रा करके, हैदराबाद आ पहंचे और हमारी नयी नाटक मण्डली के प्रबन्धकों श्री जेठमल परसराम, श्री लालचन्द अमरडिनोमल और श्री सन्तदास मंघाराम ने उनका भव्य स्वागत कर उन्हें भाई नारायण के भव्य नारायण महल में अतिथि रुप में ठहराया। उस रात अकादेमी स्कूल के जेकब हॉल में गुरुदेव के सम्मुख हमारा कार्यक्रम प्रस्तुत होना था।''

''प्रतिष्ठित अतिथियों के स्वागत में सारा हॉल फूलों से सजाया गया था..... निश्चित समय पर हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। छोटे-बड़े दर्शकगण उठकर सैनिकों की भांति आदर से पंक्तिबद्ध खड़े हो गए। मंच पर से पर्दे की झिरी से झांक्कर देखा, श्री जेठमल और अन्य प्रबन्धकों ने उस महान व्यक्ति का स्वागत कर उन्हें अन्दर ला कर कुर्सी पर बैठा दिया था।''

''मेरा हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। इसी बीच श्री लालचन्द मंच पर चले आए और प्रदर्शन आरम्भ करने का संकेत उन्होंने दिया। बस, पर्दा उठने के बाद क्या हुआ, उसका मुझे कोई ज्ञान ही नहीं रहा। सिर चकराता रहा और एक के बाद एक कार्यक्रम प्रस्तुत होता रहा तथा हाल में तालियों की गड़गड़ाहट होती रही। 'चित्रा' वाले दृश्य में अर्जुन का अभिनय करते हुए भी मुझे होश नहीं रहा कि मैं क्या कर रहा हूं! दर्शकों की तरफ मैं प्रायः देखता ही नहीं। परन्तु इस बार केवल एक क्षण के लिए सामने ऊँचे आसन पर बैठे हुए महाकवि की ओर मेरी दृष्टि उठ गई और मैं समझता हूँ कि एक हलकी सी मुस्कान उनके मुख पर विद्यमान थी। उद्विग्नता की दशा में कार्यक्रम के दो घन्टे मानों पलक झपकते समाप्त हो गए। पर्दा अन्तिम बार गिरा। तालियाँ बजीं और कवि मोटर में चढ़कर विश्राम के लिए नारायण महल को चले गये। पीछे मैं, नाटक के लिए इकट्ठी की गई सामग्री को समेटते हुए सोचने लगा, 'न जाने मेरा परिश्रम सफल रहा या नहीं!'' अथवा 'कवि के मुख पर आयी वह मुस्कान ठठोली मिश्रित थी!'

''दूसरे दिन प्रातः समय, उदास सा चाय पी रहा था कि श्री जेठमल का सन्देश मिला कि-'साढ़े नौ बजे नारायण महल में उपस्थित रहें। राह में श्री टहिलराम आडवाणी को भी घर से साथ लेते आना। गुरुदेव टैगोर आप दोनों से मिलना चाहते हैं।'' टैगोर जैसा महान व्यक्तित्व हम जैसे तुच्छ जीवों से मिलना चाहता है!

''.....ठीक साढ़े नौ बजे नारायण महल पहुंचने पर श्री जेठमल को हमारी प्रतीक्षा में खड़े पाया। वह हमें कवि के कमरे वाले बरामदे में ले गए और चपरासी से अन्दर कहलवा दिया कि- 'कल वाले अभिनेता आप से मिलने के लिए आए हैं।' अपने हृदय की धड़कन मुझे स्पष्ट सुनाई दे रही थी और हम इसी प्रतीक्षा में थे कि अभी अन्दर जाकर कवि के दर्शन करते हैं! कि इतने में वे स्वयं ही बाहर निकल आए!

''........ कवि ने अपने दोनों बलिष्ट हाथ बढ़ाकर, हम दानों का एक-एक हाथ पकड़ लिया। श्री जेठमल ने हमारा परिचय कराया- 'ये दोनों युवक भी आपकी भांति जमींदार घरानों के है और इनके पिता भी आपस में ऐसे ही घनिष्ट मित्र थे, जैसे ये दोनों हैं । (मेरी तरफ संकेत कर) यह युवक तो कॉलेज शिक्षा समाप्त कर अब अपने पिता की जमीन सम्भालता है'।

''कवि ने मेरी बाँह को थोड़ा सा झटका देते हुए कहा - 'शाबास! मैं भी बाहर गांव में पिता की जमींदारी सम्भालता था तथा कलकत्ता आकर नाटक और नाच - गाना किया करता था। अब अन्दर चल कर मेरे साथ नाश्ता कीजिए वहीं पर हम कल के नाटक के सम्बन्ध में बातचीत करेंगे । फिर तो हम दोनों की वे बांह पकड़कर अपने साथ खाने के कमरे में ले गए। दस्तरख़्वान * की एक तरफ़ हम दोनों को बैठाया और दूसरी तरफ़ स्वयं तथा श्री जेठमल बैठ गए। कवि के साथ नाश्ता करने का सौभाग्य प्राप्त करते हुए निम्नलिखित बातचीत हुई -

''मैंने अटकते-अटकते पूछा - हमने आपकी 'चित्रा' का सर्वनाश तो नहीं कर दिया? उत्तर दिया - तो फिर आप लोगों को बुलवाकर मिलनें का कष्ट ही क्यों देता? आपने तो मेरी ''चित्रा'' के साथ पूर्ण न्याय किया है।

प्रसन्नता से मैंने पूछा - वह कैसे? हमें तो ऐसी आशा ही नहीं थीं।

उन्होंने कहा- एक तो जो अध्याय आप लोगों ने मंचित किया, उस में पूरे नाटक का तत्व समाया हुआ था। दूसरे यह कि जंगल के अव्यवस्थित रंगबिरंगी दृश्य दिखाने की बजाय, हलके सादे रंगो वाले पर्दों का प्रयोग किया, जो मेरी रूचि के अनुकूल है।

श्री जेठमल ने मेरी ओर देखकर कहा इस युवक के, नाटक दिखाने सम्बधी विचार भी ऐसे हीं हैं।

कवि ने कहा– बहुत अच्छा ! तीसरे यह कि तुम दोनों ने वेशभूषा भी अपनी भूमिका के अनुकूल और ठण्डे रंगों वाली पहनी थीं। (टहिलराम की तरफ देखकर) पुरुष, स्त्रियों की भूमिका करें, यह प्रायः मुझे बुरा लगता है। क्योंकि, पुरुष के व्यवहार से स्त्री स्वभाव की कोमलता झलकना सम्भव नहीं है। (टहिलराम का मुख मलीन हो गया) परन्तु तुम देखने में अल्प-वयस्क हो और तुम्हारी आवाज़ में भी अभी पुरुषत्व की कड़क नहीं आई है, जिस कारण मुझे तुम्हारी स्त्री - भूमिका भी पर्याप्त स्वाभाविक लगी।

टहिलराम यहां गद् गद् हो गया और उसने पूछा -'पर श्रीमान, यह तो बताइए कि आपको हमारा अभिनय कैसा लगा? कवि ने मुसकुराकर कहा 'बड़ी बात यही है कि मुझे तुम लोगों का अभिनय अच्छा लगा तभी तो तुम लोगों से मिलने को जी किया। 'उनकी मदभरी आंखों में चमक आ गई और उन्होंने आगे कहा -'सचमुच तो मैंने अपना ''चित्रा'' नाटक अंग्रेजी में अनेक बार विद्यालयों, कॉलेजों और संस्थाओं में देखा है। परन्तु तुम लोगों ने जिस आन्तरिक भावना तथा यथार्थता से अपनी भूमिकाएं की, वह मैंने अन्यत्र कही नहीं देखी। संकेत कम, पर स्वर तथा मुखमण्डल के हावभाव द्वारा अभिव्यक्ति अधिक। तुम दोनों ने अर्जुन और चित्रा के अन्तस में प्रवेश कर उन पात्रों को सशक्त बना दिया।'

कवि के मुख से ऐसे शब्द सुनकर हमारी आंखें हर्षातिरेक से भर आयी। पर कवि कहते रहे - 'तुम लोगों के अंग्रेजी के उच्चारण भी सर्वथा सही थे, जो बहुत कम हिन्दुस्तानी कर सकते हैं। तुम लोग कौन से कानवेण्ट में पढ़े हो?'

मैंने उत्तर दिया- श्रीमान, कॉनवेण्ट में तो हम लोग नहीं पढ़े, हां इतना अवश्य है कि विद्यालय में मुझे अंग्रेज़ी का उच्चारण एक मुस्लिम अध्यापक श्री गुलाम अली नाना ने सिखाया और कॉलेज में हम दोनों प्रिन्सीपल शाहाणी साहब से सीखे।

---

* वह कपड़ा जिस पर बैठकर खाना खाते हैं।

कवि ने प्रश्न किया- ''गार्डनर'' के एक गीत का पाठ एक युवक ने अच्छा किया, वह कौन था और उसे सही उच्चारण किसने सिखाया?

मैनें उत्तर दिया- वह मेरा छोटा भाई था और उसे मैंने ही कविता- पाठ सिखाया था।

कविने अन्तिम प्रश्न किया- तुम लोगों की सिन्धी भाषा में हंसाने वाली नकल (फार्स) भी अच्छी लगी। भाषा न समझते हुए भी मैं तात्पर्य समझ गया था और बहुत हंसा।

श्री जेठमल ने बताया कि- वह भाग हमने प्रसिद्ध लेखक मिर्ज़ा कलीच बेग के नाटक ''नेकी और बदी'' से लिया था।

कवि ने मुझे कहा- पहले तो मै तुम्हें बावरची की भूमिका में, दाढ़ी और मूंछो से पहचाना ही नहीं, बूढ़े मरीज की आवाज़ भी तुमने पर्याप्त बदल ली थी। परन्तु बाद में चलने- फिरने से समझ गया कि वही अर्जुन वाला अभिनेता है।

यहां नाश्ता समाप्त हो गया। गुरुदेव हमारे हाथ पकड़ कर हमें बाहर तक छोड़ने आए और हमें विदा करते हुए उन्होंने कहा- ईश्वर करे, नाटक कला में तुम और उन्नति करो, मेरा आशीर्वाद है।

इस प्रकार गुरु- ज्ञान और गुरु- मंन्त्र लेकर हम अति आनन्द से चुपचाप घर लौटे।''

गुरुदेव टैगोर के कर कमलों से उद्‌घाटित यह नाटक मण्डली सिन्धी साहित्य तथा सभ्यता के इतिहास में एक सीमा- रेखा मानी जाती है। इसने 15 - 16 वर्षों के अपने कार्यकाल में आर्थिक तथा राजनीतिक उद्देश्यों वाले (जिन में आधे से आधिक मौलिक थे) बड़े नाटक प्रस्तुत करने का अद्वितीय कार्य किया। उनमें से थोड़े प्रोफ़ेसर मल्काणी के तथा अधिकंश श्री दरियाणी के थे। प्रोफ़सर मल्काणी ने उनमें से कतिपय में अभिनय भी किया, तथा कुछ का निर्देशन भी किया। गुरुज्ञान तथा गुरुमन्त्र लेने के पश्चात तो प्रोफ़सर मल्काणी आधुनिक एकांकी के जनक बन गए।

अध्याय 5

प्रोफ़ेसर के रूप में

प्रोफ़ेसर मल्काणी ज्योंही रविन्द्रनाथ नाटक मण्डली के उद्‌घाटन समारोह के कार्यों से मुक्त होकर अपने खेतों पर वापस लौटे तो कुछ समय पश्चात उन्हें प्रोफ़ेसर शाहाणी ने आमंत्रित किया कि - 'कराची आओ तो तुम्हें अंग्रेज़ी का सम्मानित सदस्य (Honorary Fellow) मनोनीत करूं।' प्रोफ़ेसर मल्काणी को भला और क्या चाहिए था? जमींदारी को तो वे मानों कैद समझ रहे थे। फिर एक महीने तक गुरुदेव टैगोर के समक्ष सांस्कृत्तिक कार्यक्रम प्रस्तुत करने की तैयारी में व्यस्त रह कर तो मानों वे अपने मनोलोक में जा पहुंचे थे। सो कृषिजन्य एकाकीपन तथा उदासीनता उन्हें काटने लगे। इस लिए अंग्रेजी फेलो के पद के लिए प्राप्त निमंत्रण को उन्होंने बखुशी स्वीकार किया।

अपने इस अपूर्व आनन्द को प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अपनी पुस्तक "साहित्यकारनि जूं स्मृत्यूं" (साहित्यकारों की स्मृतियां) में इन शब्दों में अभिव्यक्त किया है :-

'अन्धा क्या मांगे ईश्वर से, दो आंखे ! मेरे लिए तो यह ईश्वरीय देन थी ! मैंने सोचा - शाहाणी साहब पर मेरा, अंग्रेज़ी ज्ञान के सम्बध में अच्छा प्रभाव पड़ा लगता है... उनके व्याख्यान मैं ध्यान और रुचि से सुनता था। कुछ बुद्धिमत्तापूर्ण प्रश्न भी उनसे पूछता था... प्रोफ़ेसरों के टैनिस-कोर्ट पर वे मुझे अपने साथ खेलाते भी थे। मैं उनका प्रिय शिष्य था, शायद इसी कारण उन्होंने मुझे बुलवाया होगा... बस, फिर तो पिताजी ने भी प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दी और मैं तुरन्त ही जाकर अपने पुराने कॉलेज में 'फेलो' बना... हॉस्टेल का वार्डन भी मुझे ही नियुक्त किया गया। इस प्रकार मेरे रहने की व्यवस्था भी मनोवांछित हो गई... उस बीच मुझें व्याखता का पद, बोर्ड से अनुशंसा करके दिलवा दिया गया था।'

इस प्रकार जैसे वे डी. जे. सिन्ध कॉलेज (कराची) में फेलो से व्याखता और फिर प्रोफ़ेसर बने, वैसे ही हॉस्टल के वार्डन से बढ़कर उसके अधीक्षक भी बने। ये दानों पद उन्होंने अत्यन्त योग्यता और क्षमतापूर्वक सम्भाले। जो भी हिन्दू - मुसलमान विद्यार्थी उनके पास पढ़े थे अथवा होस्टल में रहे थे, वे आज तक उनकी पढ़ाई और व्यवस्था का बड़े आदर और श्रद्धा से वर्णन करते हैं।

उनके एक ऐसे ही विद्यार्थी थे दादा जशन वासवाणी। पुणे में प्रोफ़ेसर मल्काणी, देहान्त से कुछ समय पूर्व अपनी भतीजी मिसेज़ रीटा शाहाणी के यहां अक्टूबर 1980 में जाकर रहे थे। वहां जब दादा जशन वासवाणी से उनकी भेंट हुई तो उन्होंने उन्हें बताया कि 'आपने मुझे कॉलेज में पढ़ाया था' और पुस्तकों आदि का भी स्मरण करवाया। साधु वासवाणी की समाधी के पास तो दादा जशन धरती पर बैठकर प्रोफ़ेसर मल्काणी के जूतों के तस्में बांधने लगे और प्रोफ़ेसर मल्काणी की मोटर मे पीछे-पीछे कुछ दूर तक पैदल भी गए। ऐसा आदर और इतनी श्रद्धा देखकर प्रोफ़ेसर मल्काणी को

अत्यन्त आश्चर्य हुआ। *

एक ऐसे मुस्लिम विद्यार्थी (जो उनके पास डी. जे. सिन्ध कॉलेज, कराची में पढ़ा था) की पुत्री खैरूलनिसा (खैर-उल-निसा) जाफ़री, जो आज सिन्ध की न केवल उच्च कोटि की एक लेखिका हैं बल्कि सिन्ध यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर भी हैं, प्रोफ़ेसर मल्काणी की मृत्यु से केवल तीन सप्ताह पूर्व बम्बई में इस लेखक द्वारा उनके साथ कराई गई भेंट के समय, उन्हें अपने पिता की ओर से प्यार भरी स्मृतियां और विनयपूर्ण सलाम निवेदन किए थे। प्रोफ़ेसर मल्काणी ने भी अपने उस विद्यार्थी को शुभकामनाएं भेजी थीं। **

न केवल आज, पर बटवारे से पूर्व वाले समय में भी, उनके अध्यापन और होस्टल व्यवस्था की प्रशंसा थी, जो कि इस लेखक ने स्वयं भी अपने कानों से सुनी थी। विशेष कर जब बी. ए. की परीक्षा के समय तथा हैदराबाद के डी. जे. नैशनल कॉलेज के विशेषांक ''फुलेली'' के सम्पादन के सम्बध में कराची जाने पर, मेठाराम हॉस्टल में लेखक मित्रों से भेंट हुई थी तो प्रोफ़ेसर मल्काणी को भी देखने का अवसर मुझे मिला था।

डी. जे. सिन्ध कॉलेज में उन्हें सर्वप्रथम अपना प्रिय विषय ''ड्रामा'' अंग्रेज़ी में पढ़ाने को मिला था, जो वे कई वर्षों तक पढ़ाते रहे थे। वास्तव में उन्होंने स्वयं इस विषय पर पीएच. डी. करना चाहा था। इस लिए उन्होंने इब्सन., गालस्वर्दी, मैटरलिंक, बर्नार्ड शॉ आदि प्रसिद्ध नाटककारों का गहराई से अध्ययन किया था। इन लोगों, और यूरोपीय ड्रामा के सम्बन्ध में कई लेख भी उन्होंने अंग्रेजी में प्रकाशित करवाए थे।

प्रोफ़ेसर मल्काणी अपने अध्यापन को रोचक तथा आकर्षक बनाने के लिए, अध्ययन के साथ अभिनय से भी काम लिया करते थे। वे अपने व्याखान तथा सांकेतिक हावभाव ऐसे नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करते थे कि, जो बात समझाना चाहते थे, उसका सजीव चित्र सा विद्यार्थियों के सम्मुख साकार होने लगता था। फिर यदि कहीं सुन्दरता और प्रेम का वर्णन आता था तो, वह ऐसी यथार्थता तथा स्पष्ट वादिता से, परन्तु शिष्टतापूर्वक करते थे कि वह अनुचित नहीं लगता था। विद्यार्थी भी इस कारण उनका व्याखान बड़े ध्यान से सुनते थे। उन लोगों को कक्षा में उस समय हंसी - ठिठोली करने का अथवा प्रोफ़ेसर को वश में करने का अवसर कम ही मिलता था।

वास्तव में प्रोफ़ेसर मल्काणी, विद्यार्थियों को पढ़ाई की पुस्तकों का कीड़ा बनाने वाले अध्यापक नहीं थे। वे उन्हें कॉलेज की पुस्तकों के साथ - साथ इस विशाल संसार के लिखे ग्रंथ का भी ज्ञान देना चाहते थे। इस कारण वे प्रतिदिन प्रायः किसी फिल्म, नाटक या दूसरे किसी समारोह का अवलोकन करके आते और उस सम्बन्ध में भी अपनी जानकारी से कक्षा को अवगत कराते थे। प्रोफ़ेसरी के समय कभी भी बनाव - सिंगार करके टाई और फुल सूट पहनकर नहीं आते थे फिर भी उनके लम्बे आकार व उत्तम व्यक्तित्व की विद्यार्थियों पर ऐसी धाक होती थी, कि कॉलेज हो या हॉस्टल - सब जगह लोग अनुशासित रहते थे।

---

* 'रचना' त्रैमासिक पत्रिका जनवरी-मार्च 1982. ** ''रचना'' अक्टूबर-दिसं- 1980

कॉलेज में प्रोफ़ेसर मल्काणी के साथ दो वृद्ध साथी साहित्यकार श्री भेरूमल महरचन्द और श्री लालचन्द अमरडिनोमल और समयवस्क साहित्यकार श्री. एल. एच. अजवाणी भी प्रोफ़ेसर थे, तथापि कॉलेज में वे इन लोगों से कुछ अधिक ही छात्रप्रिय लगते थे; शायद कॉलेज के सांस्कृतिक कार्यक्रमों में उनका सक्रिय सहभाग भी इसकी एक वजह रही हो।

प्रिन्सिपल साहिबसिंह शाहाणी ने तो सन् 1924 में फेलोशिप देने के साथ ही कॉलेज की नाटक मण्डली फिर से आरम्भ करने के लिए उन्हें कहा था। यही मण्डली 1917 में प्रोफ़ेसर के सचिव पद पर होने के दिनों झगडों के कारण बन्द हो गई थी। इन्होंने न केवल उसे पुनः आरम्भ किया बल्कि उसे तीन चार वर्ष सफलतापूर्वक चलाया भी। हर वर्ष उस मण्डली की तरफ से अच्छे नाटक भी उन्होंने प्रस्तुत किए। जिन में कुछ में तो उन्होने खुद भी भूमिकाएं की। मण्डली के सचिव का पद त्यागने के पश्चात भी वे उसके नाटकों तथा समारोहों में ऐसे तत्पर रहते थे कि, 1937 में कॉलेज के गोल्डन जुबली (स्वर्ण जयन्ती) अंक में, उसके सम्पादक प्रोफेसर एल. एच. अजवाणी ने प्रोफेसर मल्काणी को उस मण्डली के 'प्राणाधार' कहकर सम्बोधित किया। उन प्रस्तुत कार्यक्रमों के नाटकों के निर्देशक प्रोफेसर मल्काणी थे। उन्होंने स्वयं भी उस समय प्रस्तुत गुरुदेव टैगोर के नाटक "पोस्ट आफिस" में मुख्य भूमिका की थी।

प्रोफेसर अजवाणी ने अपने सम्पादकीय में लिखा था, "प्रोफेसर एम. यू. मल्काणी के सहयोग के बिना ये जुबली मंच प्रतियोगिताएं आयोजित किया जाना कठिन ही होता... निःसंदेह प्रोफेसर मल्काणी को ही भिन्न भिन्न कार्यक्रमों और अन्य अभिनेताओं को तैयार करनेका उत्तरदायित्व सौंपा हुआ था। मुख्य रुप से उनके ही कारण जुबली ड्रामा ने इमैच्योर एक्टिंग में पूरे परगने में एक नया रेकॉर्ड स्थापित किया।"

इस प्रकार प्रोफ़ेसर मंघाराम उधाराम मल्काणी ने डी. जे. सिन्ध कॉलेज (कराची) में बटवारे तक कोई बीस - बाईस साल तक पढ़ाया। तत्पश्चात वे अपने तीन बच्चों इंदु, सुन्दर और मैना जो उस समय कॉलेज में पढ़ते थे, के साथ बम्बई चले आए। उनकी पत्नी सरस्वती प्रायः अस्वस्थ रहती थी, फरवरी 1944 में उनका देहान्त हो चुका था। उसके पश्चात उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया और शेष आयु अपने प्रथम प्यार "पुस्तकों" के साथ ही बिताते हुए व्यतीत कर दी।

बम्बई में जयहिन्द कॉलेज में अंग्रेज़ी भाषा के प्रोफ़ेसर नियुक्त होने के पश्चात वे उन्नति कर विभागाध्यक्ष नियुक्त हुए। वहां से 14 वर्षों की सेवा के बाद 1962 ई. में सेवानिवृत्त हुए। फिर वे अपने ज्येष्ठ पुत्र इंदु के पास कलकत्ता जा कर रहे।

अध्याय 6
नाटक तथा फ़िल्म अभिनेता

प्रोफ़ेसर मल्काणी को बचपन से ही नाटक-कला की ईश्वरीय देन प्राप्त हुई थी। विद्यालय चाहे कॉलेज के समय में उन्होंने मुख्य भूमिकाएं निबाह कर नाटक-अभिनय में नाम कमाया। शिक्षा पूर्ण करने के बाद सिन्धी रंगमंच को उन्नति प्रदान करने वाले नाटकों के निर्देशक तथा नाटक मण्डली के वे निर्माता बने। इस दिशा में हैदराबाद सिन्ध में उस समय पधारे हुए गुरुदेव टैगोर के सम्मुख प्रस्तुत रुपकों में प्रोफ़ेसर मल्काणी द्वारा किए गए अभिनय तथा निर्देशन का गुरुदेव की ओर से किया गया गुणगान और प्रशंसा ने उन्हें बहुत उत्साहित किया। इसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

अब प्रोफ़ेसर मल्काणी ने रबिन्द्रनाथ नाटक मण्डली के लिए तीन अंको वाले वृहत्त नाटक लिखने आरम्भ किए। पहला नाटक ''किस्मत'' 1927 में लिखा, जो एक अंग्रेज़ी लेखक नाब्लॉक के नाटक का अनुवाद था। दूसरा, इब्रानी लेखक ज़ैन्गोल का रुपान्तर ''एकता जो आलापु'' (एकता का स्वर) नाम से लिखा। तीसरा, मौलिक नाटक ''खिन जी ख़ता'' (क्षण की भूल) था और चौथा था ऐतिहासिक नाटक ''अनारकली''।

ये चारों नाटक मंच पर आ चुके थे। इनमें से दूसरा और तीसरा तो सफल हुए ही थे, साथ ही श्रेष्ठ होने के कारण उन्हें पारितोषिक भी प्राप्त हुए थे। ''एकता जो आलापु'' जाति-पांति तथा छुआछुत के भेदभाव के विरूद्ध आवाज उठाने वाला राष्ट्रिय नाटक था, तो 'खिन जी ख़ता' कुंवारी मां की ज्वलंत समस्या पर नवीन युग का सामाजिक साहसपूर्ण नाटक था। इसमें, प्रोफ़ेसर मल्काणी के शब्दों में-''युवा लड़के लडकियों के बे-रोक-टोक मिलने जुलने के बुरे परिणाम दिखाए गए थे ...इस नाटक पर समाचार-पत्रों में इतना शोर मचा था जितना आम तौर पर किसी नाटक के सम्बन्ध में नहीं मचा था...इसे कुछ अंग्रेजी समाचार-पत्रों नें बहुत सराहा गया, तो कुछ सिन्धी समाचार-पत्रों ने इसकी बहुत निंदा की...

यह नाटक जब रबिद्रनाथ नाटक मण्डली की ओर से कराची में प्रस्तुत किया गया,तब उस नाटक में मुख्य भूमिका प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अत्यन्त उत्साह से की थी।

''अनारकली'' नाटक उस मण्डली की ओर से 1937 में प्रस्तुत किया गया, उसमें नायिका की भूमिका वास्तव में नयन मीरचन्दाणी ने की थी जो सिन्धी रंगमंच की उन्नति में सहायक सिद्ध हुई थी। क्यों कि, उस से पूर्व लड़कियों के माता-पिता के बन्धनों के कारण नाटकों में नायिकाओं की भूमिका भी लड़के ही किया करते थे, जैसा कि उस समय कई अन्य भाषाओं के नाटकों में भी होता था। ख़ुद प्रोफ़ेसर मल्काणी ने भी किसी समय लड़की की भूमिकाएं की थीं।

किन्तु प्रोफ़ेसर मल्काणी ने श्री खानचन्द दरियाणी के जिन नाटकों में मुख्य पुरुष पात्र की भूमिकाएं की वे प्रायः सफल हुए थे। कुछ की बहुत प्रशंसा हुई, तो किसी पर उन्हें विश्व प्रसिद्ध अभिनेता की उपाधि भी मिली थी। ये भूमिकाएं भी भिन्न-भिन्न स्वभाव तथा जीवन-चरित्र युक्त थीं। विश्व प्रसिद्ध नाटककार इब्सन के ''पिलर्स ऑफ़ सोसायटी'' के रुपान्तरित नाटक ''मुल्क जा मुदब्बिर'' (1923) (देश के राजनीतिज्ञ) सिन्धी नाटक कला में क्रांतिकारी परिवर्तन लाया था। उसमें प्रोफ़ेसर मल्काणी ने एक मुख्य पात्र, जहाज़ के मतवाले प्रेमी का स्वाभाविक अभिनय किया था, जो कि जहाज़ के स्वामी की पुत्री संगीना पर मोहित होता है। संगीना अपने पिता के वैभवशाली रहन-सहन से दुःखी होती है।

श्री दरियाणी के मौलिक तथा अति महत्वपूर्ण नाटक 'जमींदारी जुल्म' (1928) में प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अत्याचार के शिकार एक वृद्ध किसान के रुप में मुख्य पात्र की भूमिका की थी। हैदराबाद के एक समाचार पत्र ने उनके अभिनय के विषय में लिखा था, ''.....मनपसन्द (मंघाराम) ने अतिसुन्दर कार्य किया.....मानों वह निर्दयता तथा वैमनस्य का बदला लेने वाला अवतार बन गया था। आनेवाले समय में किसान तथा खेतिहर मज़दूर अवश्य ऐसा ही खूंख्वार रुप धारण करेंगे....''

एक अन्य ऐसे ही मौलिक, विशिष्ठ राजनीतिक तथा आर्थिक नाटक ''बुख जो शिकारु'' (भूख का शिकार) में प्रोफ़ेसर मल्काणी ने भूख के शिकार एक बेरोज़गार नायक की भूमिका की थी। उन्होंने उसे ऐसे स्वाभाविक और प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया कि हाल से 'वाह! वाह!! बहुत अच्छे' शब्दों के स्वर सुनाई देने लगे। उस समय (उस दृश्य में) नायक (प्रोफ़ेसर मल्काणी) के हाथों में भूख की शिकार अपनी बहन का शव था और जिह्वा पर धनवानों पर उसकी मृत्यु का आरोप।

पर, सर्वश्रेष्ठ भूमिका प्रोफ़ेसर मल्काणी ने की थी, श्री दरयाणी के मौलिक नाटक ''ज़माने जी लहिर'' (ज़माने की लहर) 1929 में। नवयुग के विवाहित जोड़ों तथा उनके पुराने विचारों वाले माता-पिता के बीच दिखाए गए संघर्ष में, प्रोफ़ेसर मल्काणी ने नव विवाहित पति की भूमिका में, जब माता - पिता उसे अपनी नवोढ़ा से खुल्लम-खुल्ला बात करने और घूमने-फिरने की स्वतंत्रता प्रदान नहीं करते, तब शराबी और जुआरी सिरफिरे मजनू का इतना सफल अभिनय प्रस्तुत किया कि उस समय के प्रसिद्ध समाचार पत्र ''सिन्ध ऑब्ज़र्वर'' के सम्पादक मिस्टर पन्हैया ने उन्हें सिन्धी रंगमंच का एमिल जैनिंग्स'' (Emil Jannings) की उपाधि दी थी। प्रसिद्ध सिन्धी साहित्यकार तथा पत्रकार भाई जेठमल परसराम ने प्रोफ़ेसर मल्काणी के उस अभिनय को ''हैमलेट'' का स्मरण दिलाने वाला अभिनय कहा था। *

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने नाट्यकारिता का ऐसा उत्तम प्रदर्शन किया कि उन्हें हिन्दी-उर्दू फिल्म ''इनसान या शैतान'' (1933) में नायक की भूमिका दी गई थी। यह फिल्म उनके ही घनिष्ठ मित्र श्री खानचन्द दरियाणी द्वारा आरम्भ की गई पहली सिन्धी फिल्म कम्पनी ''ईस्टर्न आर्ट्स प्रॉडक्शन'' की पहली सवाक् प्रस्तुति थी। श्री दरियाणी 1932 में सिन्ध छोड़कर बम्बई जाकर फिल्में बनाने लगे थे। इसी कारण रबिन्द्रनाथ नाटक मण्डली को बहुत धक्का लगा। इस फिल्म में प्रोफ़ेसर मल्काणी के साथ उस समय की

* सिन्धी नस्र जी तारीख - पष्ठ 147 से 165 (सिन्धी गद्य का इतिहास)

दो प्रसिध्द अभिनेत्रियां जद्दन बाई (नरगिस की माता) और उर्मिलन ने क्रमशः देहाती पत्नी तथा शहरी प्रियतमा की भूमिकाएं की थीं । नायक के रूप में प्रोफ़ेसर मल्काणी द्वारा की गई भूमिका को बहुत पसन्द किया गया था ।

परन्तु वे अपने नाटककार मित्र श्री दरियाणी की तरह फिल्म लाइन में फंस कर बम्बई में की बैठ नहीं रह सके । उनकी बुआ के बेटे श्री मोती गिदवाणी पहले से ही फिल्म लाइन में थे तथावे "इन्सान और शैतान" के निर्देशक भी थे । प्रोफ़ेसर मल्काणी ने ही उन्हें लंदन भेजकर फिल्मी शिक्षा दिलवाने के लिए अपने पिता को प्रेरित किया था । क्यों कि प्रोफेसर मल्काणी के मन में फिल्मकला के प्रति लगाव था, तथा छाया चित्रण (फोटोग्राफी) के प्रति भी रूचि । याहां तक कि वे अपने द्वारा ख़ीचे गए चित्रों की डेवलपिंग प्रिंटींग स्वयं ही घर पर करते थे । फिल्मों में भी उन्हें इतनी गहरी दिलचस्पी थी की प्रायः प्रतिदिन कोई न कोई हिन्दी या अंग्रेज़ी फिल्म वे अवश्य देखते थे ।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ते बाध्य होकर फिल्में देखना तब बंद किया जब देहान्त से कुछ वर्ष उन्हें कानों से सुनाई देना बन्द हो गया था । फिर भी वे अन्त तक फिल्मी पत्रिकाएं बहुत पढ़ते रहते थे तथा नायक नायिकाओं के व्यावसायिक और व्यक्तिगत जीवन वृत्तांतों में विषेश रूचि लेते थे । फिल्मों में इतनी रूचि होते हुए भी प्रोफ़ेसर मल्काणी के पैर फिल्मीं दुनिया में नहीं टिके और वे अपनी राह लौट आए । श्री ख़ानचन्द दरियाणी के फि लमी दुनिया में चले जाने से सिन्धी नाट्यकारिता में जो रिक्तता उत्पन्न हो गई थी, प्रोफ़ेसर मल्काणी ने उसे भरने का भरसक प्रयत्न किया ।

वास्तव में यह, सिन्धी साहित्य, सिन्धियत तथा विशेषतया आधुनिक सिन्धी एकांकी का सौभाग्य था जो प्रोफ़ेसर मल्काणी फिल्मी महाजाल में नहीं फंसे । लगभग उसी समय भारत की आधुनिक हिन्दी कहानी तथा उपन्यास के जन्मदाता मुन्शी प्रेमचन्द बम्बई के फिल्मी कुचक्र से स्वयं को बचाकर अपने गांव भाग आए थे । मुन्शी प्रेमचन्द ने उसके बाद जिस तरह "गौदान" (उपन्यास) और "कफ़न" (कहानी) जैसी श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियां हिन्दी जगत को दीं, वैसे ही प्रोफ़ेसर मल्काणी ने भी "बट्टई" जैसा श्रेष्ठ नाटक और "टी पार्टी" जैसा एक उत्कृष्ट हास्य एकांकी सिन्धी संसार को दिए ।

अध्याय 7

आधुनिक एकांकी के जन्मदाता

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने 1929-1930 के नवीन युग की आवश्यकता की पूर्ति करने वाले छोटे सिन्धी नाटक को वास्तविकता चित्रित करने वाला आधुनिक एकांकी (माडर्न वन एक्ट प्ले) लिखा । उसमें सिन्धी जीवन का रुपान्तर था । उन्होंने समाज के ज्वलंत प्रश्न और देश की समस्याएं प्रस्तुत की थी । जिन में बाह्य तथा आन्तरिक दोनों पक्ष थे । वे नाटक न तो दूसरी भाषा की नकल थे और न ही अनुवाद । पूर्ण मौलिक सिन्धी सौरभ वाले नाटक थे । इस से पूर्व का सिन्धी एकांकी नाटक, कला या विषय की दृष्टि से प्रायः आधुनिक नहीं था । अधिकांशतः वह कपोलकल्पित, धार्मिक या हास्यपूर्ण, बढ़ा - चढ़ा कर कही गई बात की नकल अथवा आपसी लटका - झटका ही होता था । उसमें सिन्धी समाज का गम्भीर तथा गृहजीवन का मन-मस्तिष्क पर प्रभाव डालने वाला कलात्मक चित्रण बिरले ही होता था । ऐसा प्रयत्न तथा सफल प्रयत्न सर्व प्रथम प्रोफ़ेसर मल्काणी ने किया । इस कारण उन्हें ही आधुनिक सिन्धी एकांकी का जन्मदाता कहा जाता है ।

इस सम्बन्ध में प्रोफ़ेसर मल्काणी स्वयं अपनी पुस्तक ''सिन्धी नस्र जी तारीख'' (सिन्धी गद्य का इतिहास) में बटवारें से पूर्व वाले छोटे नाटक के सम्बन्ध में लिखते है, ''... मै समझता हूं कि छोटे नाटक के क्षेत्र में मैं अकेला ही लेखक हूं, जिसने गम्भीरता पूर्वक गृहजीवन सम्बन्धी, सामजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं पर 20-25 छोटे नाटक तैयार कर, सिन्धी एकांकी को सामजिक सुधार का माध्यम बनाया है । इन में, सृजन सम्बन्धी नियमों का भी पूर्ण निर्वाह करने का प्रयास किया गया है । जैसे, कम से कम घटनाओं, दृश्यों, पात्रों तथा छोटे - छोटे स्वाभाविक संवादों, से न्यायपूर्वक किसी निहित विशेष आशय की पूर्ति हो सके ।''

वे उसमें आगे लिखते है कि, ''अपने नाटकों में से कुछ मैंने मंचपर भी प्रस्तुत किइ थे, जिन में मैं स्वयं भी अभिनय करता था और जिन्ह कुछ दर्शकगण, साहसपूर्वक सामाजिक आलोचना करने के कारण सराहते भी थे, तो कुछ लोग निर्लज्जता और नंगेपन के लिए उनकी बुराई भी करते थे ।

प्रोफ़ेसर मल्काणी के 1930 से 1945 तक नाटक, पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे । उनमें से पांच 1937 में प्रकाशित एक संग्रह ''पंज नन्ढिरा नाटक'' (पांच लघु नाटक) में और चार एक अन्य संग्रह ''पंगती पर्दा'' 1938 में प्रकाशित हुए थे । उनके कुछ स्पष्टवादी नाटकों पर जो थोड़ा बहुत होहला मचा था, उसे दयान में रखते हुए प्रोफ़ेसर मल्काणी ने दूसरे संग्रह ''पंगती पर्दा'' (सामजिक व्यवधान) में स्वयं की लिखी भूमिका में नाटक और साहित्यसृजन के उद्देश तथा उनकी उपयोगिता पर पर्याप्त प्रकाश डाला है । जो कि उनके विचारों तथा विचारधारा को स्पष्ट करता है ।

वे लिखते हैं.......''आज के समय में साधारण जनता का संघर्ष इस सीमा तक बढ़ चुका है कि, जीवन में अच्छाई या सुन्दरता तो शायद ही रह गयी है। हमारा घरेलु, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन कठिनाइयों से परिपूर्ण है। शेक्सपीयर के प्रसिद्ध संवाद के अनुसार, यदि नाटक, जीवन का दर्पण है तो आज के नाटकों में उन कठिनाइयों को प्रस्तुत किए बिना नहीं रहा जा सकता। शिष्टाचार पर जोर देने वाले कुछ महानुभावों की आपत्ति है कि हमारे जीवन में बीमारियां अवश्य हैं, परन्तु उन्हें परदे में ही रहने देना चाहिए। उनका प्रदर्शन निर्लज्जता है। तथापि मुझे लगता है कि बीमारी छिपाने का अर्थ होगा उसे अन्दर ही अन्दर रिसने देना। बीमारी को खुले आम प्रदर्शित किये जाने पर ही तो उसका उपचार किया जा सकेगा ! उसी प्रकार समाज की बुराइयों को ढकना, उनका साहस बढ़ाना है। परन्तु उन्हें प्रकट करके लोगों का ध्यान आकर्षित किया जायेगा तो वे उन बुराइयों से किनारा करेंगे और यही समाज सुधार का उचित ढंग है।

उस भूमिका के क्रम में प्रोफ़ेसर मल्काणी ने सिन्धी गद्य के इतिहास में छोटे नाटक की उन्नति वाले अध्याय में लिखा है- ''...... मेरा विचार है कि साहित्य को मनबहलाव के साथ - साथ शिक्षा भी देनी होती है। और मेरा दृढ़ विश्वास है कि जीवन की बुराइयों को निकाल फेंकने और मनुष्य जाति को सम्पन्न बनाने के लिए नाटक जैसा प्रभावी माध्यम और कोई नहीं हो सकता। क्योंकि, जीवन-दृश्य रंगमंच पर अपनी आंखों से देखने का जो प्रभाव उत्पन्न होता है, वह पुस्तकालय में बैठ कर पुस्तक पढ़ने से नहीं हो सकेगा।''

प्रथम संग्रह ''पंज नन्ढिरा नाटक'' (पांच लघु नाटक) सिन्धी के श्रेष्ठ गद्य लेखकों की महान त्रिमूर्ति श्री भेरूमल महरचन्द, श्री जेठमल परसराम और श्री. लालचन्द अमर डिनोमल को रूचिकर लगा था। उन्होंने ऐसे विचार भी व्यक्त किए थे। श्री. भेरूमल ने लिखा था - ''मेरे मित्र तथा सहयोगी ने नाटक कारिता के सिद्धान्तों का प्रशंसनीय अनुसरण किया है। विषयवस्तु भी उत्तम है। किसी नाटक में घरेलु परिस्थितियों का चित्रण है तो किसी में व्यंग्य है। सामाजिक नाटकों का उद्देश्य ही यही है कि समाज में जो बुराइयां व्याप्त हैं, उन्हें स्पष्टतया प्रदर्शित कर सुधार की कोई राह बनाई जाए।''

भाई जेठमल ने विषयवस्तु तथा योजना की मौलिकता के सम्बन्ध में लिखा था कि - ''उस दिशा में इसने (प्रों. मल्काणी) अच्छी सफलता प्राप्त की है। पुस्तक की भाषा भी अच्छी है ...... कई स्थानों पर पूर्णतया शुद्ध और घरों में बोली जाने वाली सिन्धी भाषा का प्रयोग किया गया है ..... ऐसे ग्रन्थों का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार होना चाहिए।''

श्री. लालचन्द ने लिखा,''...मिस्टर मंघाराम अपने इस प्रयास तथा परिश्रम के लिए प्रशंसा का पात्र है। वाक्य विन्यास सरल, लेखनी में प्रवाह तथा उमंग अच्छे हैं। ''पापु कीन पुंञु?'' (पाप या पुण्य) नाटक में किशनी की मां के चरित्र में.... अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है ..... ''ब बाह्यूं'' (दो अग्नियां) में रतना के लिए सहानुभूति उत्पन्न होती है ..... ''प्रीत जी रीत'' (प्रीत की रीत) में मां और बेटे के दोनों चित्र अत्यन्त निपुणता से चित्रित हैं। ''टी पार्टी'' में युवक वर्ग का छिछोरापन और ''बट्टई'' में जमींदार वर्ग की हठधर्मी और अत्याचार की प्रस्तुति अत्यन्त योग्यता से हुई है।''

आधुनिक सिन्धी लघु नाटक के जन्मदाता होने के नाते प्रोफ़ेसर मल्काणी ने न केवल एक नयी राह बनाई अपितु अधिक से अधिक ऐसे नाटक लिख कर, उसे प्रशस्त राजमार्ग बनाया।

बटवारे के पश्चात भारत आने पर उन्होंने कुछ नए एकांकी भी लिखे। उन नाटकों को नए युग की आवश्यकतानुसार नए विषय या परिभाषा की दृष्टि से अत्यन्त स्पष्टता एवं साहस के साथ प्रस्तुत किया। उसी समय बटवारे से पूर्व लिखित नाटकों में भी, समय व स्थान आदि की दृष्टि से साधारण हेरफेर कर पुनः प्रकाशित करवाए। ये सब एकांकी बटवारे के बाद प्रकाशित पांच एकांकी संग्रहों में सम्मिलित हैं। एकांकियों के इतने अधिक संग्रह अन्य किसी भी नाटककार के प्रकाशित नहीं हैं। आधुनिक सिन्धी एकांकी के जन्मदाता प्रोफ़ेसर मल्काणी की इस उपलब्धि का नाटककारिता में यह एक सीमाचिन्ह माना जाता है।

अध्याय 8

नाटक संग्रहों पर समालोचना

देश के बटवारे के बाद प्रोफ़ेसर मल्काणी के लिखे एकांकियों के पांच संग्रह प्रकाशित हुए हैं. - 1. जीवन चहिचटा (1957), 2. पापु कीन पुत्र (1962), 3. खड़िखबीत पिया टमिकनि (1967), 4. आखरीन भेट (1975), 5. समुंड जी गजिकार (1979). इन संग्रहों में बटवारे से पूर्व तथा पश्चात के नाटक सम्मिलित किए गए हैं।

ये नाटक, एकांकी कला की दृष्टि से सर्वथा पूर्ण है। इसलिए न केवल पढ़ने में दिलचस्प है बल्कि रंगमंच कला की कसौटी पर भी खरे उतरते हैं। कई तो सचमुच रंगमंच पर भी प्रस्तुत किये जा चुके हैं। इस सफलता का विशेष कारण शायद यह है कि प्रोफेसर मल्काणी स्वयं एक अभिनेता तथा निर्देशक थे, और साथ ही उन्होंने नाटक कला का पूरा अध्ययन भी किया था। विशेष कर. अपने समय के विश्वप्रसिद्ध और सर्वप्रिय नाटककारों इब्सन, मैटरलिंक, गल्सवर्दी तथा बर्नार्ड शॉ को उन्होंने बड़े चाव से पढ़ा था। उन्होंने स्वयं को बर्नार्ड शॉ का शिष्य कहा है। उनके ही कुछ अप्रिय नाटकों (Unpleasant Plays) से प्रभावित होकर अपने कुछ नाटकों को भी उन्होंने अप्रिय नाटक कहा। तथापि, चाहते हुए भी वे वैसा ही शीर्षक अपने किसी संग्रह को नहीं दे पाये।

इन नाटकों में जीवन का वास्तविक चित्रण (किन्तु हू-ब-हू चित्र नहीं) है। उनकी योजना, उचित है। घटना चक्र स्वाभाविक तथा संवाद यथोचित हैं। घटनाओं, दृश्यों तथा पात्रों में मितव्ययिता बरती गई है, भाषा भी मृदुल तथा निर्मल है।

1 " जीवन चहिचटा" (जीवन दृश्य)

इस संग्रह में जीवन के वास्तविक चित्र दिए गए है। "औलाद" नाटक में मध्यम वर्गीय दंपति की, परिवार नियोजन के प्रति उदासीनता के कारण हुई दुर्दशा दिखाई गई है। अर्ध शताब्दी पूर्व लिखा गया यह नाटक आज भी उतना ही नया लगता है।

संग्रह का दूसरा नाटक "नाख़लफ" (कपूत) एक ऐसे पुत्र की कहानी है जो अपने पिता तथा सौतेली मां से पूरा स्नेह तथा संरक्षण न पाने के कारण पिता से उलझता है। अन्त में पिता का झुकना स्वाभाविक ही है। यह नाटक प्रोफ़ेसर मल्काणी के उन चुनिंदा नाटकों में से एक है, जिन में पुरानी तथा नयी पीढ़ी की सीधी टक्कर दिखाई देती है।

तीसरा नाटक "ब बाह्यूं" (दो अग्नियां) उस पुरुष का चित्र है जो अपनी दूसरी पत्नी के प्रेम और प्रथम पत्नी के पुत्र के प्यार रूपी दो अग्नियों में फंसा हुआ रहता है। और अन्त में किसी अन्य स्थान पर पढ़ने के लिए जबरदस्ती भेजे जाने पर बेटा आत्महत्या कर लेता है। नाटक का यह अन्त एक कारुणिक प्रभाव उत्पन्न करता है।

चौथा नाटक "मेलाप" (मिलाप) सिन्धियों के विरुद्ध गैर- सिन्धियों द्वारा बरते जाने वाले भेदभाव पर चोट करने के लिए विशेषरूप से लिखा गया है तथा यह साधारणतः

भिन्न - भिन्न जातियों में मेल मिलाप की महता की ज्वलन्त समस्या से सम्बन्धित है। इस नाटक में एक सिन्धी व्यक्ति अपनी बेटी का विवाह एक गैर सिन्धी से विवश होकर करता है। किन्तु यह विवाह दो हृदयों का प्रेम मिलन सिद्ध होता है।

पांचवे नाटक "एकता" में भी यही समस्या प्रस्तुत की गई है। किन्तु इसमें एक पंजाबी, अपनी बेटी का विवाह एक सिन्धी युवक से इस लिए करता है, क्यों कि वह उस युवक को अपना हृदय दे बैठी है। यह नाटक न केवल प्रोफेसर मल्काणी का अपितु सिन्धी भाषा का एक गम्भीरतम नाटक है। क्यों कि इस में एक स्थान छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाने की सिन्धियों की कठिनाइयों का चित्रण है। देश के बटवारे की पीड़ा प्रदर्शित करने वाला यह प्रथम नाटक है। इसके अतिरिक्त नाटक में धनाढ्य वर्ग की प्रकृति का भी स्पष्ट चित्रण किया गया है। इससे प्रोफ़सर मल्काणी की प्रगतिशीलता भी प्रकट होती है।

इस नाटक में प्रोफ़ेसर मल्काणी, पात्रों के मुख से धनाढ्यों तथा व्यापारियों को 'कसाई' कहते हैं। तथा नायिका अपने धनाढ्य पिता को 'दरिद्रों' के पसीने व परिश्रम से बने 'मालदार' कहती है। लेखक, नायक के मुख से कहलवाते है कि -"बहुत समय से धनवान गरीबों को सताते आ रहे हैं, पर अब यह सब सहनशक्ति से बाहर है... ऐसा कब तक चलता रहेगा?" तो नायक की प्रियतमा के पिता उत्तर देते हैं - जब तक पूंजीवाद का राज्य है, तब तक यह व्यवहार बदलना नहीं है।"

इस संग्रह का छठा नाटक "प्रीत जी रीत" सच्चे तथा विशाल प्रेम का संदेश देता है। इस में एक मनोवैज्ञानिक चित्रण है, कि कैसे एक मां अपने विवाहित बेटे का पूर्ण प्यार स्वयं के लिए चाहती है और उसे अपनी पत्नी को पूरा प्यार देने में स्वयं बाधक बनती है। वही बेटा अपनी पत्नी से सारा प्यार अपने लिए चाहता है जो वह उसके - अपने बच्चे के लिए भी चाहती है, जिसे वह अपने लिए बाधक समझने लगता है।

सातवां नाटक "टी पार्टी" हास्य एवं व्यंगपूर्ण है। सच तो यह है कि यह नाटक सिन्धी भाषा के हास्यरसात्मक साहित्य की एक अत्युत्तम कृति है। यह अर्ध शताब्दी पश्चात आज भी नया ही लगता है। इस में झूठे मूल्यों पर कड़ी चोट की गई है। इस नाटक के सभी पात्र स्त्रियां हैं, जो कि उच्च मध्यम वर्ग की तथा आधुनिक (Modern) हैं। ये स्वयं का झूठा बड़पन और आडम्बर युक्त स्पष्ट रूप प्रस्तुत करती हैं।

प्रोफ़ेसर मल्काणी का यही एक नाटक है जो अन्य कई नाटकों की तरह न केवल भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में बार-बार प्रकाशित होता रहा है, अपितु दस पन्द्रह बार रंगमंच पर भी प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम बार यह नाटक प्रोफ़ेसर मल्काणी के देहान्त के पश्चात (31 दिसम्बर 1980) हैदराबाद सिन्ध में सिन्धी नाटक शताब्दी उत्सव के अवसर पर प्रस्तुत किया गया था। हैदराबाद सिन्ध की जनता को "टी पार्टी" तब भी उतना ही रूचिकर लगा जितना लगभग अर्धशताब्दी पूर्व रूचिकर लगा था। *

"टी पार्टी" नाटक, ऑल इण्डिया रेडियो से न केवल सिन्धी भाषा में बल्कि उर्दू तथा हिन्दी में भी प्रसारित हो चुका है। तथा कुछ अन्य भाषाओं में भी यह नाटक

---

* "सिन्धी नाटक सदी" (दिसम्बर 1980) पृष्ठ 73-74.

प्रकाशित किया जा चुका है। इस नाटक की ऐसी अनुपम लोकप्रियता के लिए प्रोफ़ेसर मल्काणी अपनी पुस्तक "सिन्धी नस्र जी तारीख" (सिन्धी गद्य का इतिहास) में लिखते हैं:-

"टी पार्टी ...1935 में प्रथम बार प्रकाशित हुआ था। तत्पश्चात कई स्कूलों, कॉलेजों तथा मण्डलियों ने यह नाटक बार-बार सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया। इसका उर्दू अनुवाद प्रोफ़ेसर तासीर का किया हुआ 1943 में ऑल इण्डिया रेडिओ (दिल्ली) से भी इसे प्रसारित किया गया था। मेरे नाटकों में से "टी पार्टी" ने सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की है। और आश्चर्य की बात है कि स्वभाव में हास्य प्रकृति कम होने पर भी, गम्भीर नाटककार होने का स्वत्व मानते हुए भी, मेरा यह हास्य नाटक ही सर्वाधिक लोकप्रिय प्रमाणित हुआ है।"

वास्तव में यह नाटक प्रोफ़ेसर मल्काणी के घनिष्ठ मित्र प्रोफ़ेसर टी. एच. आडवाणी ने उस समय में ही अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद कर लाहौर में प्रगतशील लेखक वर्ग के सामने पढ़ा था। वह उन लोगों को रूचिकर लगा था। कुछ उपस्थित महानुभावों ने तो उस पर अपने विचार भी व्यक्त किए थे। ऐसी रिपोर्ट उस समय लाहौर के अंग्रेज़ी मुख्य दैनिक पत्र "ट्रिब्यून" में भी प्रकाशित हुई थी। उस रिपोर्ट में कहा गया था कि -"लाहौर के प्रगतशील लेखक संगठन के अध्यक्ष श्री तासीर साहब की अध्यक्षता में, पंजाबी साहित्य सभा के क्लब हाऊस में हुई बैठक में, खालसा कालेज के प्रोफ़ेसर टी. एच. आडवाणी ने श्री एम. यू. मल्काणी के लिखे रूचिकर नाटक का सुन्दर अंग्रेज़ी में किया गया अनुवाद पढ़ा। इस नाटक ने, विशेषकर सिन्ध की किशोरियों के आधुनिक चालचलन पर लिखे व्यंग ने अति आनन्द दिया।" *

प्रोफ़ेसर टी. एच. आडवाणी ने भी अपने मित्र श्री मल्काणी को 4 जून 1935 को लिखे अपने पत्र में "टी पार्टी" नाटक के अंग्रेज़ी अनुवाद के सम्बन्ध में लिखा था कि-"मैंने तुम्हारा यह नाटक "टी पार्टी" प्रगतशील लेखक वर्ग के सामने पढ़ा। वहां हर सदस्य ने उसकी सराहना की... एक महानुभाव ने तो कहा-'वह इतना अच्छा था कि उसपर कोई टीका-टिप्पणी नहीं ही जा सकती।' फिर भी कुछ प्रश्न पूछे गए-'क्या नाटक वाली घटना सच्ची है, या बढ़ा-चढ़ा कर कही गयी है?दूसरा यह कि प्रगतशील लेखक की दृष्टि से वह प्रतिक्रियावादी तो नहीं? क्यों कि वह प्रगति पर ठिठोली नहीं थी।'

मैंने दोनों प्रश्नों के उत्तर दिए, जो उपस्थित महानुभावों को सन्तोषप्रद लगे... उपस्थित महानुभावों ने भी निर्णय दिया कि नाटक वास्तव में प्रगतिवाद के विरूद्ध नहीं था... मैंने उनका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया, कि अनुवाद में मूल नाटक की और भी कुछ सुन्दर बातें सम्मिलित नहीं हो सकी है। तब भी उन्होंने कहा कि -'अंग्रेजी में नाटक जिस रूप में है उसी रूप में वह सचमुच अत्यन्त आनन्ददायक है।"

प्रोफ़ेसर टी. एच. आडवाणी के पत्र से स्पष्ट है कि जब हिन्दुस्तान में प्रगतिशील लेखकों के आन्दोलन तथा संगठन के लिए प्रयास किए जा रहे थे, तब हमारे श्रेष्ठ नाटकार प्रोफ़ेसर मंघाराम उधाराम मल्काणी भी अपने उस मित्र के माध्यम से उन लोगों से सम्पर्क बनाए हुए थे।

---

* 'रोज़ानी ट्रिब्यून' लाहौर 4 जून 1935

इस संग्रह के एक आर्थिक एकांकी ''बट्टई'' और दूसरे एक हास्य नाटक ''लेडीज़ क्लब'' के अतिरिक्त अन्य सभी नाटक प्रेम और उसके खुल्लमखुल्ला व्यक्त करने से सम्बन्धित हैं, जिन्हें लेखक ने कभी सूक्ष्म तो कभी तीव्र समस्याओं वाले नाटक कहा है।

''लेडीज़ क्लब'' नाटक ''टी पार्टी'' जैसा न केवल हंसाने वाला व्यंग्यात्मक प्रहसन है अपितु उसमें अभिनय करने वाले सभी नारी पात्र स्त्रियां हैं। यह नाटक दिखावा चाहने वालीं स्त्रियों के, बुराई करने वाले स्वभाव को भली भांति अधोरेखित करता है। यह आज भी एक सार्थक व सफल प्रहसन है।

''बट्टई'' नाटक मुस्लिम जीवन और किसानों की समस्या पर लगभग अर्ध-शताब्दि पूर्व लिखा ऐसा प्रथम आधुनिक एकांकी है। इस में जमींदारों की हठधमिर्ता और किसानों की सजगता तथा उनके अधिकारों के पृष्ठ पोषण का चित्रण है। इसमें दिखाया गया है कि प्रोफ़ेसर मल्काणी को, किसानों के साथ सहयोग करने वाले जमींदार का आचरण करने की प्रेरणा अपने प्रगतिशील जमींदार पिता से मिली थी, और इसी को उन्होने नाटक में चित्रित किया है।

इस संग्रह में मुस्लिम जीवन पर आधारित एक अन्य नाटक भी है ''ज़ईफ़ु इनसानु'' (दुर्बल प्राणी) प्यार, सगाई और विवाह के विषयों पर यह अच्छा नाटक है। प्रोफ़ेसर मल्काणी जैसे बिरले ही हिन्दू नाटककार न केवल उस समय में बल्कि आज भी इस प्रकार का मुस्लिम जीवन पर आधारित नाटक लिखते हैं।

''अकेली दिल'' (एकाकी मन) एकांकी में, पुरुष द्वारा बाध्य होकर अपनी पत्नी के जीते जी दूसरा विवाह करने की बाध्यता की समीक्षा की गई है। इस में दिखाया गया है कि ऐसा विवाह विशेषकर पति-पत्नी के आपसी स्वभाव की प्रतिकूलता के कारण आवश्यक हो जाता है। इस नाटक का विषय आज के समय में तो सर्वव्यापक सा दिखाई देता है, किन्तु जब वह लिखा गया था तब वह बहुत सूक्ष्म तथा असाधारण था। उसे प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अत्यन्त रूचि से निभाया है। इसकी प्रेरणा उन्हें प्रसिद्ध लेखक तथा समाज सेवी ऋषि दयाराम गिदूमल के जीवन के अन्तिम समय में मिली थी। यह नाटक समर्पित भी उन्हें ही किया गया है।

''पाप जो कीतो'' (पाप का फल) प्रोफ़ेसर मल्काणी का सर्व प्रथम नाटक है जो 1930 में प्रकाशित हुआ था। इस कारण इतना प्रभावशाली नहीं लगता। विशेषकर उसका विषय भी साधारण, स्त्री सुलभ ईर्ष्या से सम्बद्ध है और कुछ थोड़ा सा भाग अनुचित काम-सम्बन्धों पर आधारित है। ऐसा ही कम प्रभावशील एक अन्य नाटक इस संग्रह में है ''पापु कीन पुञु'' (पाप या पुण्य)। इस नाटक में जीवन से दुःखी व्यक्ति द्वारा आत्म त्याग करने की तरफ़दारी की गई है। यह विषय अवश्य ही पर्याप्त ध्यान देने योग्य है।

इस संग्रह के अन्य तीन नाटक 1. 'दिल ऐं दिमागु' (मन और मस्तिष्क) 2. 'ब भेनरु' (दो बहिनें) और 3. 'बी जाल (दूसरी पत्नी), प्यार के त्रिकोण पर आधारित हैं। पहले में-पति-पत्नी और पति की एक विद्यार्थिनी है, जो पत्नी के संदेह का कारण बनती है। अन्त में वह संदेह दूर हो जाता है। दूसरे नाटक में - छोटी और बड़ी बहन तथा एक प्रोफेसर है, जिसे दोनों बहनें प्यार करती हैं। परन्तु वह बड़ी को चाहता है। तीसरे नाटक में फिर पति-पत्नी तथा पति की प्रथम पत्नी से उत्पन्न एक पुत्र है। इस युवा पुत्र का अपनी सौतेली मां से प्रेम है। ये तीनों दृश्य मनोवैज्ञानिक तथा कोमल सम्बन्धों पर आधारित हैं, और उनमें गम्भीरता कम है ।

3. ''खड़िखबीता पिया टमकनि'' (जुगनूं टिमटिमाते हैं) इस संग्रह में तीन नाटक, आधुनिक समय के नए कला–कौशल और विषय से सम्बन्धित हैं। 1. ''सूंहं जो नुमाउ'' (सुन्दरता का प्रदर्शन) 2. ''प्रेम जी सेजा''(प्रेम की सेज)- 3. ''खड़िखबीता पिया टमिकनि'' (जुगनूं टिमटिमाते है)।

प्रथम एकांकी में, कार्यालय में अर्धनग्न सुन्दरता का प्रदर्शन करके अपना शील गंवाने वाली किशोरी तथा उससे विवाह करने वाले साहसी युवका का चित्रण है।

दूसरे में, पति–पत्नी का एक दूसरे को अनिच्छा से प्यार करने तथा सच्चे हृदय से प्यार करने का परिणाम दिखाया गया है। तीसरे नाटक में विक्षिप्त यौवन का दृश्य चित्रित है।

ये तीनों एकांकी, स्वच्छंद व्यवहार पर करारी चोट करते है। तीनों स्वाभाविक तथा प्रभावशाली है।

इस संग्रह का चौथा नाटक ''चिकणि जो फूल'' (कीचड़ का फूल) वेश्या से प्यार करने तथा उससे विवाह करने के विषय से सम्बद्ध है। पर उसका प्रस्तुतीकरण और समाधान साधारण प्रकार का है। इस नाटक में यद्यपि यौन आकर्षण का खुला प्रदर्शन है, तथापि वह सामाजिक उद्देश की दृष्टि से किया गया है।

इस संग्रह के शेष दो एकांकी ''माता जी ममता'' (माता की ममता) और ''पिता जो पापु'' (पिता का पाप) अन्तर्जातीय विवाह और माता-पिता की संकीर्णता तथा बल प्रयोग का चित्र प्रस्तुत करते है। किन्तु ये, प्रोफ़ेसर मल्काणी के दो ऐसे ही विषयों पर आधारित अन्य नाटक ''मेलाप'' तथा ''एकता'' जैसे प्रभावशाली और सफल नहीं लगते।

4. ''आखिरीन भेट'' (अन्तिम भेंट) -

इस संग्रह के नाटक भिन्न-भिन्न विषयों तथा ज्वलंत समस्याओं पर आधारित है। कुछ में नई तकनीक को भी अपनाया गया है।

''प्यारु कीन पैसो'' (प्यार या पैसा)- प्रेम विवाह तथा दहेज के विषय पर सुन्दर और सफल नाटक है। दहेज़ की मांग पर लड़की साहस तथा वीरता दिखा कर अपने ही प्रियतम के साथ विवाह करने से इन्कार कर देती है। यह बात, नाटक को प्रभावशाली बनाती है।

''पीरू ऐं धीउ'' (पिता और पुत्री) और ''पीरीअ जो तोशो'' (वृद्धावस्था का पाथेय), दोनों नाटक वृद्धावस्था से सम्बन्धित हैं। पहले में, बेटी विवाह के बाद अपने बीमार वृद्ध पिता से अपने सम्बन्ध समाप्त कर देती है। नाटक का अन्त वृद्ध पिता के लिए सहानुभूति उत्पन्न करता है। इस एकांकी से पुरानी तथा नई पीढ़ी के बीच टकराव भी प्रदर्शित होता है। परन्तु ऐसी ही भाव-भूमि का दूसरा नाटक ''पीरीअ जो तोशो'' ऐसा प्रभावशाली नहीं लगता। उसमें खर्चीले पिता और उसकी निष्ठुर पत्नी के आचरण कम स्वाभाविक लगते हैं।

''रूप ऐं कला'' (रूप और कला) इस संग्रह का नाटक एक नये निराले विषय पर आधारित है। इसमें, नाटक में काम करने वाले कलाकारों के नख़रे और निर्देशकों की कठिनाईयों के विषय को बड़े आकर्षक ढंग से निभाया गया है।

''पाप जूं पाडूं'' (पाप की जड़ें) और ''हुगलीअ जे किनारे'' (हुगली के किनारे) दो

नाटक भी तकनीक तथा विषय की दृष्टि से, अनोखे है और इस संग्रह की गरिमा को बढ़ाते है। दोनों में वासना की प्यास बुझाने का चित्रण है। पहले में, एक बड़ी आयु का पुरुष अपनी पुत्री की आयु वाली लड़की से शारीरीक प्यास बुझाने का प्रयास करता है।

तो दूसरे नाटक में एक पुरुष अपनी नौकरानी से अपनी वासना की तृप्ति करना चाहता है, और उसकी पत्नी अपने मित्र से वह तृप्ति प्राप्त करती है। प्रोफ़ेसर मल्काणी ने दोनों नाटको में, यौन सम्बन्धो की स्वतन्त्रता की समस्या को सामाजिक परिवेश में प्रस्तुत किया है, और उन परिस्थितियों को ही उत्तरदायी ठहराया है जिनके कारण ये अपराध होते हैं।

5. ''समुंड जी गजिकार'' (समुद्र की गर्जना)

एकांकियों के इस अन्तिम संग्रह में तीन नाटक 1. समुंड जी गजिकार 2. कूड़ो कलंक (झूठा कलंक), 3. जीवन नासु(जीवन नष्ट) भिन्न-भिन्न होते हुए भी सफल लगते हैं और मिलकर एक वृहत, तीन अंको का नाटक भी लगता है। ये अन्य नाटकों की भांति, प्रोफ़ेसर मल्काणी के न केवल व्यक्तिगत अनुभवों अथवा निरीक्षणों पर आधारित है, वरन् उनके अपने जीवन का ही भाग हैं। जैसा कि उन्होंने इस संग्रह की भूमिका में यही लिखा भी है। प्रोफ़ेसर मल्काणी ने यह संग्रह वास्तव में इन तीनों एकांकियों की नायिका को ही समर्पित किया हैं, जिसके साथ उनका सच्चा तथा पवित्र प्रेम था। इस से प्रोफ़ेसर मल्काणी की निश्छलता, स्पष्टवादिता तथा सत्यता, पूर्णतया प्रकट होती है।

पहला नाटक ''समुंड जी गजिकार'' एक अध्यापक मोहन का 'जुहू' समुद्र के किनारे, अपनी एक युवा विद्यार्थिनी मैना से प्रेम और विद्यार्थिनी की सगाई किसी अन्य से होने से सम्बन्धित है। दूसरा नाटक ''कूड़ो कलंक'' मोहन का मैना से वासना युक्त प्यार होने का झूठा कलंक स्वयं पर लेकर भी मैना को अन्य किसी से विवाह करने के लिए मनाने से सम्बद्ध है। तीसरा नाटक ''जीवन नासु'' दोनों नाटकों की शिखा सदृश्य है। इस में दिखाया गया है कि मैना, मोहन को छोड़कर अन्य व्यक्ति गोपाल से मज़बूरन विवाह करके स्वतन्त्र जीवन बिताती है। एक दिन जुआ और घुड़दौड़ में हार जाने के कारण ऋणी बनकर मोहन से सात हज़ार रुपये उधार स्वरूप मांगने आती है। मोहन और उसकी पत्नी, मैना का जीवन सुधारने का निश्चय करते हैं। मैना के स्वतन्त्र आचरण में बदलाव स्वाभाविक और वास्तविक दिखाई देता है और नाटक के ध्येय को परिपूर्ण करता है तथा तीसरे नाटक को पूर्व के दो नाटकों से भी अधिक रूचिकर और संघर्षमय बनाता है।

इस संग्रह के ''बैराज'' (बाँध) एकांकी में किसानो का अपनी ज़मीन से लगाव और ठेकेदार तथा इन्जीनियर के धोके के कारण, नदी पर बांधा गया बांध टूटने से विनाश का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह किसानों के लिए सहानुभूति उत्पन्न करता है। लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व लिखा यह नाटक आज़ भी नया सा लगता है तथा हमारे देश की वर्तमान स्थिति को पूर्ण रूप से व्यक्त करता है।

अन्त में अनूदित नाटक ''दिलसोज़ दास्तान'' (हृदय विदारक कथा) और ''बे जोड़ बन्धन'' भी इस संग्रह में दिए गए हैं। पहला शेक्सपीयर के ''मिड समर नाइट्स ड्रीम'' के आधार पर लिखा हुआ पुराने ढंग की नाटक्कारिता पर करारा व्यंग है।

दूसरा बेल्जियम के नाटककार मैटरलिंक के नाटक पर आधारित है। किन्तु ये दोनो नाटक अन्य नाटकों की भाँति यथार्थ को चित्रित करने वाले नाटक न होने के कारण उनके नाटकों जैसे प्रभावशाली तथा रूचिकर नहीं लगते।

प्रोफ़ेसर मल्काणी के मौलिक एकांकियों की इस संक्षिप्त समालोचना से स्पष्ट कै कि उनके नाटक न केवल, जीवन और समाज, अपितु मनुष्य के भांति-भांति के रुप प्रस्तुत करते हैं, जो कहीं वास्तविक हैं तो कहीं विद्रोही, कहीं मानवतावादी और कहीं प्रगतिवादी हैं।

अध्याय 9
आलोचक और इतिहासकार

प्रोफ़ेसर मल्काणी आधुनिक सिन्धी एकांकी के जन्मदाता होने के साथ-साथ एक उच्चकोटि के आलोचक तथा साहित्य के इतिहासकार भी थे। हां, इतना अवश्य है कि इन दोनों विधाओं में अपनी लेखनी के बल पर नाटककारिता में पूर्णत: प्रस्थापित होने के पश्चात ही 1940 के लगभग उन्होंने इन दो विधाओं को आजमाया। उस समय उन्होंने भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में सिन्धी गद्य की विभिन्न विधाओं पर कुछ लेख लिखे, जिन में उनकी प्रगति का ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक जायजा लिया गया था। कुछ थोड़े से लेख कार्यान्वित आलोचना पर भी लिखे थे। किन्तु देश के बटवारे के पश्चात भारत आकर साहित्य के इतिहास तथा आलोचना को जिस प्रकार उन्नत किया वह सिन्धी साहित्य के इतिहास में उनकी एक अविस्मरणीय देन मानी जाती है।

बम्बई आने के बाद वे जयहिन्द कॉलेज में प्रोफ़ेसर बने। उस समय उन्होंने 1950 में जो प्रथम पुस्तक प्रकाशित की, वह थी ''अदबी उसूल'' (साहित्य के सिद्धान्त)। इस पुस्तक में साहित्य के उद्देश्य, गद्य, कविता, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना तथा कहानी के मूल भाव, सरल तथा मृदुल सिन्धी भाषा में संक्षेप में समझाए गए हैं। इसके साथ-साथ उन्होंने 'सिन्धी साहित्य में नयी चेतना' के शीर्षक से सिन्धी कविता तथा गद्य की सभी विधाओं का संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण भी दिया है। इसके अतिरिक्त दो वृहत नाटकों तथा तीन उपन्यासों की समालोचनाएं भी ''अदबी उसूल'' में दी गई हैं।

तात्पर्य यह कि 110 पृष्ठों वाली इस पुस्तक में साहित्य की समीक्षा (मौलिक चाहे कार्यान्वित) भी है, तो साहित्य का इतिहास भी है।बटवारे के पश्चात भारत में इस प्रकार की यह प्रथम पुस्तक प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक का बहुत स्वागत हुआ और साहित्य का अध्ययन करने वालों को ''अदबी उसूल'' पुस्तक उपयोगी लगी। इस दृष्टि से प्रोफेसर मल्काणी को भारत में इन दोनों विधाओं को आरम्भ करने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि ''अदबी उसूल'' में साहित्य की समीक्षा, या इतिहास का संक्षिप्त रूप है। इस कारण वस्तुत: दोनों विधाओं के विस्तार से विश्लेषण की आशा पूर्ण नहीं होती है। इस महत्वपूर्ण कमी को प्रोफ़ेसर मल्काणी ने आगे चलकर पूर्ण किया।

प्रोफेसर मल्काणी ने ''अदबी उसूल'' पुस्तक में सचमुच ही गागर में सागर भर देने का प्रयास किया है। इससे, उनके साहित्य के प्रति भावों, विशेषतया प्रयोजनों के सम्बन्ध में दी गई टिप्पणियों से कुछ विरोध भी उत्पन्न हुए। उनमें से कुछ का उन्होंने पुस्तक के दूसरे संस्करण में सुधार भी किया था। क्योंकि उन टिप्पणियों पर उन युवा प्रगतिशील साहित्यकारों का प्रोफेसर मल्काणी के साथ पर्याप्त वाद - विवाद भी हुआ था,

जिनके साथ उनकी हर सप्ताह सिन्धी साहित्य मण्डल की साहित्यिक गोष्ठियां आयोजित होती रहती थीं। उन में से कुछ गोष्ठियां तो साहित्य के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों पर ही होती थीं। इस कारण "अदबी उसूल" पुस्तक न केवल साहित्य का अध्ययन करने वालों के लिए, बल्कि स्वयं साहित्यकारों के लिए भी साहित्य के सिद्धान्तों आदि की समीक्षा करने के लिए सहायक सिद्ध हुई।

"अदबी उसूल" के स्वागत के बाद प्रोफ़ेसर मल्काणी की लेखनी साहित्यिक इतिहास और आलोचनात्मक लेखों पर तीव्रता से चलने लगी। भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में, सिन्धी गद्य के इतिहास की समीक्षा तथा भारत में प्रकाशित साहित्य, विशेषतया उपन्यास और कहानी संग्रहों पर समालोचना एवं आलोचना सम्बन्धी लेख एक के बाद एक प्रकाशित होते रहे। इन लेखों से, एक ओर तो बटवारे से पूर्व के साहित्य की स्थिति का ज्ञान होता है, तो दूसरी ओर भारत में नवीन सिन्धी साहित्य का। साथ ही नये साहित्यकारों की ज्ञान वृद्धि भी होती है। ऐसे बहुतसे लेख प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अंग्रेज़ी पत्रिकाओं में भी लिखे।

अन्ततः वह दिन भी आया जब प्रोफ़ेसर मल्काणी की श्रेष्ठ पुस्तक "सिन्धी नस्र जी तारीख़" (सिन्धी गद्य का इतिहास) ने सूर्यका प्रकाश देखा। किन्तु इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए उन्हें प्रकाशक को काफी आर्थिक सहायता भी देनी पड़ी थी। दिसम्बर 1968 में पुस्तक प्रकाशित हुई और दूसरे वर्ष ही उस पुस्तक पर उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। प्रोफ़ेसर मल्काणी का वर्षों का परिश्रम फलीभूत हुआ। कुछ समय पश्चात अकादेमी ने उन्हें अपना सम्मानित सदस्य (Fellow) नियुक्त किया। सिन्धी समुदाय में से यह सम्मान केवल उन्हें ही प्राप्त हुआ है जो एक अद्वितीय गौरव की बात है।

सिन्धी समुदाय ने तो पहले से ही प्रोफ़ेसर मल्काणी के नाटकों, आलोचनाओं-समालोचनाओं तथा निबन्धों आदि का हार्दिक स्वागत कर उन्हें अपना प्रिय लेखक बना ही दिया था। उनकी इस सिन्धी गद्य के इतिहास सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक ने तो उनकी रही-सही ख्याति भी हिन्द-सिन्ध के कोने-कोने में बसे सिन्धी समुदाय में फैला दी। कुछ समय पश्चात यही सिन्धी गद्य का इतिहास सिन्ध में भी प्रकाशित किया गया तो सिन्ध प्रान्त के लेखक भी इस पुस्तक से सहायता लेने लगे और अपनी पुस्तकें प्रोफ़ेसर मल्काणी को अर्पित करने लगे।

वास्तव में, साहित्य के इतिहास की दृष्टि से इस से पूर्व ऐसी कोई पुस्तक सिन्धी साहित्य में प्रकाशित नहीं हुई थी, जिस में आरम्भ से लेकर देश के बटवारे तक का सिन्धी गद्य के इतिहास का क्रमबद्ध विवरण हो। उस पुस्तक में न केवल कहानी, उपन्यास, नाटक-एकांकी (और रंगमंच), निबन्ध तथा आलोचना का इतिहास है अपितु गवेषणा भी है। कहीं-कहीं पर रचनाओं का, उद्धरणों के साथ आलोचनात्मक लेखा-जोखा भी प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक से वे साहित्य के इतिहासकार के साथ-साथ एक अन्वेषक तथा आलोचक भी सिद्ध होते हैं। यह इतिहास, सहज लेख-शैली, मृदुल तथा रोचक शब्दावली में लिखा हुआ है। यह एक ऐसी पुस्तक है जो सिन्धी गद्य के समृद्ध होने का अद्वितीय प्रमाण है।

इतिहास लेखन भी एक साहित्यिक कला है। विभिन्न रचनाएं पढ़ कर, अंक-अक्षर,

सत्यवृतांत और उद्धरण ढूंढ कर उनका संग्रहकर, फिर उन्हें क्रमवार जोड़ कर जायजा लेने के बाद ही किसी साहित्य के इतिहास का निर्माण होता है। यह कार्य भी रचनात्मक क्षमता को ही रेखांकित करता है। प्रोफ़ेसर मल्काणी का सिन्धी गद्य का इतिहास इसी का एक उदाहरण है।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने इस इतिहास में सिन्धी गद्य-पर, साहित्यिक दृष्टि के अतिरिक्त कहीं-कहीं ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिपात भी किया है। इसके अलावा उसमें "सिन्धी अदबी हलचल" (सिन्धी साहित्यिक आंदोलन) और मुख्य-मुख्य साहित्यिक तथा नाटक संस्थाओं, मण्डलियों, समाचार पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशनों पर भी प्रकाश डाला है। इतना अवश्य है कि कहीं-कहीं पर विवरण कुछ अनावश्यक तथा सामान्य से लगते हैं। प्रोफेसर मल्काणी जैसे पारखी की दृष्टि से बचकर इस तरह की अप्रस्तुत चीजें पुस्तक में नहीं आनी चाहिए थीं। इसके बावजूद ऐसा अमूल्य इतिहास ग्रंथ, साहित्य को जी-जान से संजोने वाले, पुस्तकों के कुबेर देवता तथा ऐतिहासिक, अनुसंधानात्मक एवं आलोचनात्मक योग्यताओं के स्वामी प्रोफ़ेसर मल्काणी ही रच सकते हैं।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने देश के बटवारे के बाद बम्बई में सिन्धी साहित्य के इतिहास, उन्नति, आलोचना तथा समालोचना से सम्बंधित लगभग पचास लेख प्रकाशित करवाए। उनमें से कुछ लेख तो सिन्धी गद्य के इतिहास में सम्मिलित किए गए हैं। शेष लेख उनके अन्य दो संग्रहों 1. "भारत में सिन्धी साहित जो मुख़्तसिर जाइज़ो" (भारत में सिन्धी साहित्य का संक्षिप्त अध्ययन) तथा 2. "सिन्धी साहित जी समालोचना" (सिन्धी साहित्य की समालोचना) में संग्रहीत हैं।

प्रथम संग्रह उनके देहान्त से 5-6 माह पूर्व जुलाई 1980 में प्रकाशित हुआ था। इसके लिए जिस सामग्री का चयन स्वयं उन्होंने किया था वह पूर्ण प्रकाशित नहीं हो सकी थी। अतः, शेष सामग्री तथा कुछ अन्य सामग्री मिलकर द्वितीय संग्रह उनकी प्रथम पुण्यतिथि के अवसर पर प्रकाशित हुआ था।

भारत में प्रकाशित ये दोनों पुस्तकें, सिन्धी साहित्य के क्रमिक इतिहास के सम्बन्ध में अंतिम सत्य तो नहीं हैं। किन्तु उनसे साहित्य की सब विधाओं-उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध तथा कविता की प्रगति की झलक एवं संक्षिप्त पहचान अवश्य मिलती है। दोनों की संपूर्ण सामग्री लगभग "नस्र जी तारीख़" (गद्य का इतिहास) वाली पूर्व पुस्तक जितनी है। इसमें लगभग 30 वर्षों में भिन्न-भिन्न विधाओं से सम्बन्धित एक सौ से अधिक लेखकों की पुस्तकों और लगभग 25 पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाओं की व्याख्या दी गई है। वह अधिकांशतः आलोचना ही है, परन्तु कहीं-कहीं आत्माभिव्यक्ति या अपने विचार व्यक्त करना भी प्रतीत होता है। इससे तो प्रोफ़ेसर मल्काणी बटवारे के बाद के एक श्रेष्ठ पारखी तथा टीकाकार सिद्ध होते हैं।

हर लेखक तथा आलोचक की भांति प्रोफ़ेसर मल्काणी का भी अपना एक साहित्यक दृष्टिकोण था। वह था 'साहित्य के लिए जीवन'। इसी कसौटी पर उन्होंने रचनाओं की परख की है। वह न केवल रचना की बनावट पर, अपितु स्वरूप पर भी की गई है। प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अच्छाइयों और बुराइयों दोनों का वर्णन किया है। वस्तुतः कहीं-कहीं पर तो छोटी से छोटी अच्छाई या बुराई भी उनकी व्याख्या से बच नहीं पायी

है। नए लेखकों और उभरते साहित्यकारों का उत्साह तथा साहस बढ़ाने के लिए अलबत्ता प्रोफ़ेसर मल्काणी ने उनके सम्मानार्थ अपनी लेखनी को कुछ छूट दी है। ऐसे उदाहरण इन दोनों संग्रहों में यत्र-तत्र मिलेंगे।

प्रोफेसर मल्काणी ने हानिकारक अभिरूचियों, अस्वस्थ विचारों तथा सिन्धी भाषा के आलेख सम्बन्धी त्रुटियों को अपनी आलोचना का लक्ष्य बनाया, फिर चाहे वह आलोचना नए और उभरते लेखकों के लिए ही क्यों न की गई हो।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ''सिन्धी साहित जो मुख़्तसिर जाइज़ों'' पुस्तक में नए कहानीकारों के अपरिष्कृत विचारों पर टीका-टिप्पणी करते हुए एक स्थान पर लिखते हैं- ''...यदि साहित्य में मानवीय जीवन और उसका आचरण सम्मिलित नहीं किया जायेगा तो फिर क्या सम्मिलित किया जायेगा !.... कथात्मक साहित्य, घटनाओं तथा आचरणों के बिना कैसे जुड़ सकेगा ?.... यदि ज्ञान तथा अनुभव की सत्यता और उसका विश्वसनीय कलात्मक प्रदर्शन ही साहित्य सृजन के लिए पर्याप्त हैं, तो क्या उस ज्ञान की सत्यता में मानवीय जीवन तथा आचरण नहीं आ जाते? जीवन और आचरण पर साहित्य नहीं लिखा जायेगा तो फिर किस पर लिखा जायेगा ? केवल 'युगबोध' और 'युग-चेतना' पर क्या दार्शनिक लेख लिखे जायेंगे ?? वह तो कब्रिस्तानी साहित्य हो जायेगा, न कि जीवन्त साहित्य! इस का अर्थ तो यह हुआ कि शेष रहे जीवन का उलझना, खोना, और टूटना, खोखला, ढोंगी और मायूस जीवन, को ही 'नए' साहित्य के विषय के रूप में लिया जाता हैं !.... यदि कुछ साहित्यकार जीवन के टूटने में नहीं वरन् जीवन को जोड़ने में अनुभव की सत्यता देखें या टूटते जीवन कौ जोड़ने का प्रयास करें, तो क्या वह नए युग का साहित्य नहीं हुआ ? मेरे विचार से वही सच्चा साहित्य है और यह नकली साहित्य है। वह स्वीकृत साहित्य है और यह अस्वीकृत साहित्य।''

नयी कविता लिखने वालों की हानिकारक अभिरूचि पर इसी प्रकार की आलोचना करते हुए प्रोफ़ेसर मल्काणी उक्त पुस्तक में अन्य स्थान पर कहते हैं- ''नयी कविता से ऐसा प्रतीत होता है कि, यह जीवन निरर्थक है इसका कोई प्रयोजन नहीं, कोई आदर्श नहीं, कोई अच्छाई नहीं, कोई आनन्द नहीं। जीवन मात्र पीड़ा है, दुख है-क्लेश है। इस प्रकार का दर्शन हिन्दुस्तान की वास्तविकताओं से मेल नहीं खाता।''

भाषा की त्रुटियों पर व्याख्या करते हुए प्रोफेसर मल्काणी लिखते हैं, ''दूसरी बुराई प्रयोगवादी कहानिकारों में यह है कि, कहानी में वे अंग्रेज़ी तथा हिन्दी शब्दों का हठात् प्रयोग करते हैं ! मैं समझ नहीं सकता कि सरल सिन्धी शब्दों के स्थान पर, अंग्रेज़ी या हिन्दी शब्दों का प्रयोग इस प्रकार क्यों किया जाता है ? अथवा जिन अंग्रेज़ी शब्दों के पर्यायवाची सिन्धी शब्द हमारे यहां हैं, उनके स्थान पर अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग क्यों किया जाता है ? यदि यही स्थिति रही तो यह रोग इस प्रकार फैलता जाएगा कि कुछ समय बाद सिन्धी कहानी, सिन्धी नहीं रहेगी, अंग्रेज़ी या हिन्दी हो जाएगी।.... कभी-कभी संदेह होता है कि उन नए उभरते लेखकों ने कभी सिन्धी व्याकरण का भी अध्ययन किया है या नहीं ! व्याकरण को तो छोड़िए, कई कहानीकारों को तो शुद्ध उच्चारण लिखना भी नहीं आता...''

प्रोफेसर मल्काणी की इस तीखी किन्तु सही आलोचना का कुछ नए लेखकों पर अवश्य प्रभाव पड़ा दिखाई देता है, जो अब अपनी कहानियों में विशेष रूप से शुद्ध सिन्धी भाषा

का प्रयोग करते हैं और सिन्धी जीवन पर ध्यान देने लगे हैं। इस से जाहिर होता है कि उन्हें प्रोफेसर मल्काणी की स्पष्टवादिता वाली आलोचना उचित लगी है।

वास्तव में प्रोफ़ेसर मल्काणी की आलोचना या समालोचना द्वेष या बदले की भावना, ओछापन या पक्षपात रहित है। उन्होंने ''अदबी उसूल'' पुस्तक में आलोचना पर अपना मत व्यक्त करते हुए स्पष्ट लिखा है कि ''आलोचक को लेखक के प्रति एक तटस्थ व्यक्ति की भांति परिपक्वता तथा निष्कपटता दिखानी है।'' प्रोफ़ेसर मल्काणी के उक्त दोनों संग्रहों ''भारत में सिन्धी साहित जो मुख़्तसिर जाइज़ो'' तथा ''भारत में सिन्धी साहित जी समालोचना'' की परख इस कसौटी पर खरी उतरती है। अतः वे पुस्तकें न केवल साधारण पाठकों के लिए अपितु साहित्यकारों एवं विद्वानों के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

अध्याय 10

यात्रा वर्णन, संस्मरण तथा गद्य-काव्य

प्रोफ़ेसर मंघाराम मल्काणी ने सिन्धी नाटक, साहित्य-इतिहास और अन्वेषण की कला को उन्नत करने के साथ यात्रा वर्णन, संस्मरण तथा गद्य काव्य पर भी अपनी कलम चलायी। इन पर उनकी तीन पुस्तकें हैं- 1. पच्छिमी यात्रा (1963) (पश्चिमी यात्रा) 2. साहित्यकारनि जूं स्मृत्यूं (1979) (साहित्यकारों की स्मृतियां) और 3. जवानीअ जा जज़िबा, पीरीअ जूं यादियूं (1975) (यौवन के उद्‌गार, वृद्धावस्था की स्मृतियां)।

प्रोफ़ेसर मल्काणी को बचपन से ही भ्रमण में बड़ी रूचि थी। विद्यार्थी, प्रोफ़ेसर या लेखक के रूप में वे बहुत घूमे फिरे थे। कभी अपने अध्यापकों के साथ तो कभी अपने विद्यार्थियों के साथ और कभी साहित्यकार मित्रों के साथ। किन्तु उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण यात्रा अमेरिका, इंगलैण्ड आदि यूरोपीय देशों की थी, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने पूरी पुस्तक लिख डाली।

वे 1958 में अपने ज्येष्ठ पुत्र इन्दू से मिलने अमेरिका गए थे, इन्दू अपने घर-बार सहित वहीं रहता था। वहां से लौटते समय प्रोफ़ेसर मल्काणी, इंगलैण्ड तथा अन्य यूरोपीय नगरों का भी भ्रमण करते हुए आए थे। इस यात्रा के सम्बन्ध में पहले उन्होंने एक साप्ताहिक पत्रिका में क्रमशः कई लेख लिखे, जो लोगों को बेहद पसंद आये और उस यात्रा वर्णन को पुस्तकीय रूप देने की मांग होने लगी। प्रोफेसर मल्काणी ने अपने उस यात्रा वर्णन को ''पच्छिमी यात्रा'' के नाम से प्रकाशित करवाया।

1963 में जब यह यात्रा वर्णन प्रकाशित हुआ, तब तक भारत में सिन्धी भाषा में ऐसा कोई अन्य यात्रा वर्णन उपलब्ध नहीं था। परन्तु सिन्ध प्रान्त में सईद गुलाम मुस्तफ़ा शाह का अमेरिकी ''सैरु-सफ़रु'', श्री करीम डिना राजपुर का ''अमरीका जो सफ़रु'' (अमेरिका की यात्रा) और श्री अब्दुल मजीद 'आबिद' का यात्रा वर्णन ''यूरोप जी डायरी'' (यूरोप की डायरी) नाम से पुस्तकें पहले से ही प्रकाशित थीं। परन्तु प्रोफ़ेसर मल्काणी का यात्रा वर्णन अमेरिकी जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी देने वाला, यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करनेवाला रोचक तथा सीधी-स्पष्ट सिन्धी भाषा में लिखा हुआ है। उसे पढ़ने से अमेरिका के नगरों, ग्रामों, नदी-झीलों, प्रपातों, पर्वतों तथा अन्य प्रसिद्ध स्थानों के दृश्य जैसे आंखों के सामने साक्षात तैरने लगते हैं। एक दो स्थानों पर कश्मीर के झगड़े और पं. जवाहरलाल नेहरु की तटस्थ नीति का अमेरिका द्वारा विरोध तथा नासमझी की झलक भी दी गई है। साथ ही वहां के मानवीय भेदभाव और नग्नता को भी अनावृत किया गया है। किन्तु अमेरिकी जीवन की बुराइयों की खुल्लमखुल्ला की गई आलोचना जो सिन्ध में प्रकाशित उपर्युक्त तीन लेखकों के यात्रा वर्णनों में है, वह प्रोफ़ेसर मल्काणी के यात्रा वर्णन में नहीं है। यह कमी कुछ खटकती है। शेष अन्य

प्रकार से प्रोफ़ेसर मल्काणी का यात्रा वर्णन ''पच्छिमी यात्रा'' उन यात्रा वर्णनों से अत्युत्तम तथा रुचिकर है। आज तक यहां किसी अन्य सिन्धी लेखक की अमेरिका यात्रा पर कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने इस यात्रा वर्णन में कहीं-कहीं पर प्राकृतिक दृश्यों का आकर्षक चित्रण किया है। एक स्थान पर नियाग्रा प्रपात का वर्णन करते हुए लिखते हैं- ''....ऊषा अंधकार में विलीन हो गई.... और यदि प्रपात की दूसरी ओर चले जाएं तो लाखों बिजलियों का प्रकाश आकाश में विकिरित हो रहा था। प्रपात के कंठे वाले छज्जे (Railings) पर जाकर नीचे की ओर झांको तो दोनों ओर से आती बिजली के प्रकाश में चमाचम पानी की धाराएं बल खाती हुई, मोती- माणिकों की भांति पानी की बूंदें बिखेरती हुई पाताल में गिर रही थीं। वहां से कुहेर की घटाएं भाप सी ऊपर चढ़ती बिखरती, दमक रही थीं.... वह नजारा परिस्तान से कम नहीं था। मैं सोचने लगा- क्या स्वर्ग इससे अलग होता है?''

''साहित्यकारनि जूं स्मृत्यूं'' (साहित्यकारों की स्मृतियां)-

यह पुस्तक, प्रोफ़ेसर मल्काणी का 11 साहित्यकारों और 3 अध्यापकों से सम्बन्धित संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण संस्मरणों का संग्रह है। इस संग्रह से उनके व्यक्तित्व की जानकारी तो मिलती ही है, साथ ही अंग्रेज़ी राज्य की अन्तिम अर्धशती की विशेषतः शैक्षणिक, साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन की झलक भी मिलती है जिसमें उन विभूतियों ने अपनी-अपनी भूमिका भली भांति निभायी थी।

पुस्तक में एक संस्मरण ''सिन्धी साहित जी चौयारी'' (सिन्धी साहित्य की चौकड़ी) 1. दीवान कौड़ोमल चन्दनमल 2. ऋषि दयाराम गिदूमल 3. मिर्ज़ा कलीच बेग और 4. श्री परमानन्द मेवाराम से सम्बन्धित है। ये चारों लगभग आत्म-निर्भर साहित्यकार थे। उन्होंने विशेषरूप से सिन्धी गद्य की बुनियाद को मज़बूत किया। साथ-साथ समाज सुधार के लिए भी अथक प्रयास किए तथा जनता में नवीन युग के प्रति जागृति उत्पन्न की।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने इन चारों वयोवृद्ध विभूतियों का चित्रण प्रस्तुत करने के पश्चात ''सिन्धी साहित जी टिमूर्ति'' (सिन्धी साहित्य की त्रिमूर्ति) 1. श्री भेरूमल महरचन्द आडवाणी 2. श्री जेठमल परसराम गुलराजाणी और 3. श्री लालचन्द अमरडिनोमल जगत्याणी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण दिए हैं। ये तीनों समकालीन तथा समवयस्क थे। अन्तिम दोनों तो समधी भी बन गये थे। श्री जेठमल के लड़के का विवाह श्री लालचन्द की लड़की से हुआ था। इन तीनों साहित्यकारों ने साहित्य सृजन के साथ-साथ सिन्धी जनता को भी जागृत किया और साथ ही प्रोफ़ेसर मल्काणी जैसे साहित्यकारों का साहस वर्धन भी किया।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने इस पुस्तक में उक्त सातों वयोवृद्ध साहित्यकारों के अतिरिक्त अपने तीन अध्यापकों 1. नाना गुलाम अली साहब 2. श्री वल्लीराम थधाणी और 3. श्री साहिब सिंह शाहाणी के सम्बन्ध में भी संस्मरण दिए हैं जिन्होंने उनके व्यक्तित्व तथा विद्वता पर प्रभाव डाला था।

इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने चार समकालीन लेखकों 1. स्वर्गीय श्री खानचन्द दरियाणी 2. स्वर्गीय श्री लेखराज 'अज़ीज़', 3. स्वर्गीय श्री लालसिंह अजवाणी और

4. मरहूम दाऊद पोटो से सम्बन्धित अपने संस्मरण भी दिए हैं। प्रथम तीनों व्यक्ति तो प्रोफ़ेसर मल्काणी के सहकर्मी तथा मित्र थे। उनका स्मरण वास्तव में उनकी मृत्यु पर श्रद्धांजलि के समान है।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने इन 11 व्यक्तित्वों की झलक दिखाने के साथ-साथ कुछ अपनी आत्मकथा तो कुछ उस युग की कहानी भी सुनाई है। वे लिखते हैं कि-

"उन दिनों मुझे जेब खर्च के लिए प्रति दिन चार पाई मिलती थी। जिनमें से हरू दाल वाले से तीन पूड़ियां और ऊपर से चुंगी में दाल-चटनी लेकर मैं खाता था, और शेष एक पाई शाम को बैंक (श्री दयाराम गिदूमल के दीन-दुखियों के सहायतार्थ बैंक) में जमा करवाकर ....घर लौटता था....

.... दीवान कौड़ोमल ने अपनी लड़कियों को विद्याध्ययन के लिए बंगाल भेजा था वे छुट्टियों में हैदराबाद आती थीं, और साड़ियां पहन कर तथा बेपर्दा हो कर ही टहलने निकलती थीं तो आने-जाने वालों की आंखें उन पर जा अटकती थीं....

.... फुलेली पर..... जमींदारों की चाय पार्टी में मेरे पिता मुझे भी साथ लेकर गए थे..... मैं नया-नया ही 'टाई कॉलर' वाला कॉलेज का युवक बना था..... पिता ने कहा, चल मिर्ज़ा कलीच बेग से मिलें..... मेरा परिचय कराया..... उन्होंने कहा-युवकों को सिन्धी में लिखना चहिए.....

.... मेरी मौसी का लड़का परमानन्द मेवाराम रामचन्दाणी ईसाई हो गया था। अच्छा हुआ जो मैं कुछ समय माता एनी बीसेन्ट से प्रभावित रहा अतएव नास्तिक होने के कारण धर्म परिवर्तन से बच गया!"

प्रोफ़ेसर मल्काणी की इस प्रकार की आत्म-कथा और युग की कहानी की झलक "सिन्धी साहित जी टिमूर्ति" में दिए गए संस्मरणों के इन संक्षिप्त विवरणों में भी देखी जा सकती है- "हैदराबाद सिन्ध की फौजदारी गली में... ननिहाल से लगा हुआ ही एक घर होता था..... खेलते समय मैं देखा करता था कि, अन्दर के कमरे में अधेड़ावस्था का एक व्यक्ति हर दम कुछ लिखता ही रहता था..... उन्हें दादा भेरूमल कहते थे..... मेरी नानी के वे चचेरे छोटे भाई थे..... उन्होंने अधेड़ावस्था में दूसरा विवाह किया था, जिस कारण उनका बेटा प्रभा रूठकर चला गया था और उसने सिख पंथ स्वीकार कर अपना नाम हरनामसिंह रख लिया था (जो बाद में एक योग्य लेखक बना).....

"सिन्ध प्रान्त में किसी अन्य राजनीतिक नेता का ऐसा भव्य स्वागत नहीं हुआ था जैसा श्री जेठमल परसराम का हुआ। 1919 में..... अंग्रेज़ सरकार ने उन्हें विद्रोह के अपराध में जेल भेज दिया था..... जब वे जेल की अवधि समाप्त कर अपने देश लौटे, तब.... हैदराबाद स्टेशन पर उन्हें मुखी प्रीतमदास की प्रसिद्ध लैण्डो गाड़ी पर सवार किया गया.... हैदराबाद के प्रतिष्ठित नागरिक तथा अधिकारी गण गाड़ी के घोड़ों को खोलकर स्वयं पंक्ति बनाकर गाड़ी खींचने लगे! .... हैदराबाद वासियों की भीड़ से लोग बारी-बारी से वीर सेनानी श्री जेठमल को तख़्त पर बैठा कर गाड़ी खींचते चले..... ऐसा भव्य जुलूस सिन्ध प्रान्त में कभी नहीं निकला होगा। हम, कॉलेज के विद्यार्थीगण भी टोली बनाकर जुलूस में सम्मिलित हुए थे...

".....मासिक पत्रिकाओं के जन्मदाता श्री लालचन्द अमरडिनोमल थे, जिन्होंने 1914 में "सिन्धी साहित सोसाइटी" (सिन्धी साहित्य समिति) स्थापित की..... उसके उद्घाटन समारोह में चन्दा भर दिया..... मुझे याद है कि बचपन में मिर्ज़ा कलीच बेग के नाटक

''फीरोज़ दिल अफ्रोज़'' और ''नेकी-बदी'' में उनकी (श्री लालचन्द की) यथार्थ और साहस पूर्ण भूमिकाएं मुझे अत्यन्त प्रभावित करती थीं.... 1923 में उनका नाटक ''उमरु मारुई'' कोई दस बार मंचित हुआ, जो कि उस समय का एक 'रेकॉर्ड' था.....''

इस प्रकार प्रोफ़ेसर मल्काणी अपने तीन सम वयस्क तथा सहकर्मी साहित्यकारों को श्रद्धांजली अर्पित करते हुए कहते हैं, ''दरियाणी के नाटक ''अजीबु इन्साफु'' (विचित्र न्याय) (1929) में कुछ अभिनेताओं को व्यक्तिगत सफलता मिली...... विशेषकर कुमारी नयन मीरचन्दाणी को....... उस छोटी सी बालिका ने ऐसी फुर्ती और साहस के साथ अपनी भूमिका निभाई कि उसके नाम की गूंज रही और सिन्धी नाटक के इतिहास में एक अभिनेत्री का अवतरण हुआ..... हैदराबाद में...... ''जमींदारी जुल्म'' की रिहर्सल के समय श्री हेमनदास चन्दीराम ने एक सुघड़ युवक से मेरा परिचय कराते हुए कहाः यह है हमारा लेखराज 'अज़ीज़', जो हैदराबाद के कवि सम्मेलनों की शोभा है। नाटक के सब गीत इसके रचे हुए है.....

मैंने कहा- मुझे तो इनका गीत गाने का अवसर ही नहीं मिलेगा, क्योंकि मेरी भूमिका एक वृद्ध किसान की है।

उस पर 'अज़ीज़' ने कहा- तेरा अभिनय ही पर्याप्त है गीत का मुहताज नहीं है....

''....अजवाणी और मैं कॉलेज में सहपाठी थे। उन दिनों हैदराबादी और गैर हैदराबादी छात्रों के बीच अत्यन्त वैरभाव होता था... पर हम दोनों मित्र थे, और इस वैरभाव को दूर करने के लिए सदा प्रयत्न करते रहते थे।''

तात्पर्य यह कि ''साहित्यकारनि जूं स्मृत्यूं'' पुस्तक 14 विशिष्ठ व्यक्तित्वों के सम्बन्ध में संस्मरणों के साथ प्रोफ़ेसर मल्काणी की संक्षिप्त आत्म-कथा और युग की कहानी का मधुर मिलाप है।''

''जवानीअ जा जज़्बा, पीरीअ जूं यादियूं''

(यौवन के उद्‌गार, वृद्धावस्था की स्मृतियां)

प्रोफ़ेसर मल्काणी के गद्य-काव्य के इस संग्रह में कुल 60 रचनाएं हैं, जिनके अनुभव करने, लिखने तथा प्रकाशित होने की अवधि में पर्याप्त अन्तर है. यह पुस्तक के शीर्षक से ही स्पष्ट है। प्रोफ़ेसर मल्काणी ने भी प्रस्तावना में लिखा है कि ''यौवन के उद्‌गार, वृद्धावस्था में याद करके लिपिबद्ध किए है।''

वास्तव में इस विधा पर लेखनी चलाने का आरम्भ प्रोफ़ेसर मल्काणी ने सिन्ध में, बटवारे से पूर्व ही किया था। उन्होंने गुरुदेव टैगोर के काव्य संग्रह ''गार्डनर'' का अनुवाद गद्य-काव्य में ही किया था। उस प्रकार की वह प्रथम पुस्तक थी जिसका नाम उन्होंने रखा था ''प्रीत जा गीत'' (प्रीत के गीत), किन्तु ''जवानीअ जा जज़्बा......'' उनका मौलिक संग्रह है।

इस संग्रह में उन्होंने भांति-भांति के उद्‌गार व्यक्त किए हैं। वे अधिकांशतः मानवीय सुन्दरता और प्रेम तथा, कुछ प्राकृतिक सुन्दरता और सामाजिक सम्बन्धों से सम्बद्ध हैं। सामान्यरूप से वे उद्‌गार न तो लज्जाजनक या अश्लील हैं, और न ही उनका वर्णन इस प्रकार का है। उनमें न तो बेकार की अत्युक्ति है (जैसा कि उद्‌गार प्रकट करते समय ऐसा हो सकता है) और न ही अस्पष्टता। इतना अवश्य है कि वर्णन में निडरता व स्पष्टवादिता, सत्यता व कोमलता है। सूक्ष्मता व यथार्थता है। उनमें न तो कोई जातीयता है, न ही सामाजिक उच्छृंखलता का कोई विचार उत्पन्न होता है।

इन रचनाओं में जहां नारी की विभिन्न अवस्थाओं के रंगबिरंगी रूप वर्णित है, वहीं पुरुष की मनःस्थिति के भी विचित्र प्रतिबिंब हैं। कुछ ऐसी रचनाएं तो वास्तव में अर्थयुक्त लघु कहानियां सी लगती हैं। उनमें भावनाओं और यथार्थ का मधुर मिलन है, तो साथ ही सामाजिक उद्देश्य तथा मनोवैज्ञानिक सत्य भी है। उदाहरणार्थ 1. खिल खुशीअ जी कशिश (हंसी-खुशी का आकर्षण) 2. मातापणे जो मुशाहिदो (मातृत्व का अनुभव) 3. सूंहं जी सरिगसि (सुन्दरता का जुलूस) 4. देवी ऐं इन्सानु (देवी और इन्सान) 5. ओ अंकिल (Oh. Uncle!), 6. दर्दनाक ज़बान (पीड़ोत्पादक भाषा), शीर्षक वाली रचनाएं।

इन रचनाओं में यौवन के उद्‌गार और वृद्धावस्था की स्मृतियां अत्यन्त उच्च कोटि की शब्दावली में और छोटे-छोटे वाक्यों की रंगीन व रोचक भाषा में वर्णित हैं। कहीं-कहीं पर तो ऐसी सुन्दर उपमाओं का उपयोग और सुन्दर चित्रण है कि मन की भावनाओं का वर्णन करने वाले दृश्य वस्तुतः आंखों के सम्मुख उभर आते हैं। यद्यपि कहीं-कहीं काव्य मधुरता की कमी खटकती है और गद्य की सरलता की अधिकता असह्य प्रतीत होती है। इसके बावजूद गद्य-काव्य की यह पुस्तक सिन्धी साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

अध्याय 11

सिन्धियत-आंदोलन के पथप्रदर्शक

देश के बटवारे के पश्चात का समय, भारत में सिन्धी साहित्य के लिए एक स्वर्णिम समय माना जाता है। इस छोटी सी अवधि में हमारे साहित्य की विद्या ने, बटवारे से पूर्व समय की लम्बी अवधि की अपेक्षा अधिक उन्नति की है। इस अद्वितीय सफलता के नाटक में एक वयोवृद्ध साहित्यकार ने मानों नायक की सी भूमिका निबाही थी, वे थे प्रोफ़ेसर मंघाराम उधाराम मल्काणी। उन्होंने न केवल स्वयं साहित्य सृजन किया बल्कि अन्य लेखकों का भी उत्साह वर्धन किया तथा नए-नए साहित्यकारों को भी सही मार्ग दिखाया। किन्तु इससे भी अधिक, प्रोफ़ेसर मल्काणी ने सिन्धी साहित्य और सिन्धियत आंदोलन का पथप्रदर्शक बनकर संचालन किया।

यह आंदोलन बम्बई के सिन्धी साहित्य मण्डल की ओर से आरम्भ हुआ था। भारत में सिन्धी लेखकों की वह प्रथम साहित्यिक व सांस्कृतिक संस्था थी। वह संस्था, प्रगतिशील साहित्यकारों और प्रोफ़ेसर मल्काणी तथा कुछ अन्य व्यक्तियों ने मिलकर, जनवरी 1949 में स्थापित की थी। प्रोफ़ेसर मल्काणी उस मण्डल के संस्थापक अध्यक्ष बने। मण्डल में भिन्न-भिन्न साहित्यकारों को एकत्रित करने में उनकी कुशलता को देख कर उन्हें प्रतिवर्ष ही अध्यक्ष चुना जाता रहा। 1962 ई. में कालेज से निवृत्त होने पर जब वे कलकत्ता जाकर रहने लगे तो मण्डल कुछ वर्षों में ही बन्द हो गया।

प्रोफ़ेसर मल्काणी की प्रधानता के समय मण्डल 14 वर्षों तक सिन्धी साहित्य तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र रहा। मण्डल की ओर से हर शनिवार को साहित्यिक गोष्ठी आयोजित होती थी। जिसमें न केवल बम्बई और सिन्धुनगर (उल्हासनगर) अपितु बाहर के लेखक भी आकर अपनी-अपनी रचनाएं पढ़ते थे या पढ़ने के लिए भेज दिया करते थे। कई अवसरों पर तो विशेष साहित्यिक विषयों पर वाद-विवाद भी आयोजित किए जाते थे। इसके अलावा साहित्यक गोष्ठी में आलोचना, समालोचना या अपने-अपने विचार भी प्रकट किए जाते थे। इससे नए लेखकों का पथ प्रदर्शन तो होता ही था, साथ ही प्रतिष्ठित लेखकों को भी सहायता मिलती थी। उस गोष्ठी में प्रोफ़ेसर मल्काणी की विशेष भूमिका होती थी। वे अध्यक्ष होने के नाते वाद-विवाद के निष्कर्षों पर अपने यथोचित, न्यायपूर्ण तथा दूरदर्शितापूर्ण परामर्शों एवं विचारों से सबको बहुत प्रभावित करते थे।

इस मण्डल में प्रोफ़ेसर मल्काणी के अतिरिक्त श्री लालचन्द अमरडिनोमल, श्री अमरलाल हिंगोराणी, प्रोफ़ेसर गेहीमल मूलचन्दाणी और श्री लेखराज ''अज़ीज़'' जैसे वयोवृद्ध भी भाग लेते थे। परन्तु कुछ अन्य वृद्ध साहित्यकारों को प्रोफ़ेसर मल्काणी द्वारा नवयुवक साहित्यकारों के साथ किया गया मित्रवत और समता का व्यवहार अच्छा नहीं

लगता था। पर प्रोफ़ेसर मल्काणी को इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी।

यह सिन्धी साहित्य मण्डल ही प्रथम संस्था थी, जिसने सिन्धी भाषा को भारतीय संविधान में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ स्वीकृत कराने के लिए आंदोलन आरम्भ किया था। मण्डल की ओर से दिसम्बर 1951 में जो वार्षिक सम्मेलन किया गया, उसमें सिन्धी भाषा को भारतीय संविधान में सम्मिलित करने की मांग का प्रस्ताव पारित किया गया। इसकी कार्यान्विति के लिए मण्डल के पांच प्रगतिशील कार्यकर्ताओं, श्री गोविन्द माल्ही, श्री गोविन्द पंजाबी, श्री ए.जे. उत्तम, श्री कीरत बाबाणी और श्री मोती प्रकाश की एक समिति गठित की गई। इनको तीन माह के अन्दर आंदोलन शुरू करने के लिए सभा की कार्यवाही चलाने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। उसके बाद प्रोफ़ेसर मल्काणी की अध्यक्षता में 1955 के अन्त तक इस आंदोलन से सम्बन्धित तीन सम्मेलन आयोजित किए गए। *

दिसम्बर 1956 में सिन्धियत आंदोलन को प्रोफ़ेसर मल्काणी और मण्डल के कुछ मुख्य लेखकों के सतत् प्रयासों से विशेष स्थायित्व मिला। उस समय दिल्ली में प्रथम एशियाई लेखक सम्मेलन आयोजित किया गया था, जिसका शुभारम्भ पं. जवाहरलाल नेहरू ने किया था। इस सम्मेलन में प्रोफेसर मल्काणी के मार्गदर्शन में सिन्धी लेखकों का एक बड़ा प्रतिनिधिमण्डल सम्मिलित हुआ था। जिसमें प्रोफ़ेसर राम पंजवाणी, श्री परसराम 'ज़िया', श्री अर्जुन 'शाद', श्री ए.जे उत्तम, श्रीमती सुन्दरी उत्तमचन्दाणी, श्री मोती प्रकाश, श्री मोहन कल्पना, श्रीमती कला प्रकाश, श्री मोहन गेहाणी, श्री जीवत 'जोत', श्री हरि पंकज और श्री गोम गोलाणी थे। ये सब सिन्धी साहित्य मण्डल से सम्बन्धित थे और इन्हें इस सम्मेलन के लिए विधिवत निमन्त्रण प्राप्त हुए थे।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने सिन्धी प्रतिनिधिमण्डल के अध्यक्ष के रूप में सम्मेलन में सिन्धी भाषा और साहित्य के इतिहास तथा विकास पर अत्यन्त प्रभावशाली भाषण दिया। यह प्रथम अवसर था, जब किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में सिन्धियों की आवाज़ को सुना गया था। सम्मेलन की अलग-अलग बैठकों में भी प्रोफेसर मल्काणी के अतिरिक्त अन्य लेखकों ने भी भाग लिया और भारतीय तथा विश्व के अन्य भाषा-भाषी लेखकों के साथ, सिन्धी भाषा, साहित्य तथा जाति से सम्बन्धित विचारों का आदान-प्रदान हुआ और कवि सम्मेलन में सिन्धी कविता को भी सम्मिलित किया गया।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद की ओर से सभी सम्मेलनार्थियों को दी गई पार्टी के समय, मुलाकात के लिए निर्दिष्ट विशेष समय में सिन्धी भाषा को सरकार की ओर से भारतीय संविधान में स्वीकृति प्रदान करने के लिए जोरदार अपील की। उसके बाद ही सिन्धी भाषा को साहित्य अकादेमी ने पुरस्कारों के लिए स्वीकृत किया तथा आकाशवाणी से भी. सिन्धी में कार्यक्रम प्रसारित किये जाने लगे। ये दो बड़ी सफलताएं मिलीं जो आगे चलकर सिन्धी भाषा साहित्य और सिन्धियत की उन्नति के लिए बहुत सहायक सिद्ध हुईं।

सम्मेलन में या सम्मेलन से बाहर दिल्ली शहर में, सिन्धी समुदाय की विभिन्न बस्तियों में बम्बई से आए सिन्धी लेखकों के सम्मान में आयोजित भोजों के समय भी

---

* ''नई दुनिया'' पत्रिका नवम्बर

प्रोफ़ेसर मल्काणी द्वारा सिन्धियत के पक्ष में दिए गए भाषाणों का दिल्ली की सिन्धी जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसका परिणपरिणाम यह हुआ

कि दिल्ली में सिन्धियत की जागृति की मानों बाढ़ सी आ गई। इस बात को तत्कालीन तत्पर साथी तथा उभरते साहित्यकार श्री लच्छमण निहालाणी के "हिन्दुवासी" साप्ताहिक के 20 जनवरी 1957 के अंक में प्रकाशित लेख "हाणे दिल्ली जागी आहे" (अब दिल्ली जागी है) में प्रकाट किया गया है। उन्होंने लिखा है-

"...प्रतिनिधिमण्डल के अध्यक्ष और सिन्धी गद्य के विद्वान प्रोफेसर मंघाराम मल्काणी जैसे वयोवृद्ध, श्री उत्तम जैसे आलोचक श्रीमती सुन्दरी उत्तमचन्दाणी और श्रीमती कला प्रकाश जैसी लेखिकाएं, श्री परसराम 'ज़िया', श्री मोती प्रकाश, श्री अर्जुन 'शाद' सरीखे नवयुवक कवि जहां उपस्थित हों, वहां भला आत्मा को शान्ति क्यों न मिले! मन प्रसन्न क्यों न हो!.... केवल हमारी मधुर भाषा सिन्धी को अपने देश की स्वीकृत भाषाओं और एशिया के साहित्यकारों में सर्वप्रियता प्राप्त हो तथा उन्हें सिन्धी भाषा के उन्नत साहित्य की सम्पन्नता का आभास हो, केवल इस शुभ तथा सराहना योग्य भावना और लगन से प्रेरित होकर, अपने स्वयं के व्यय पर भी ये लोग बम्बई से चलकर राजधानी आए.... 8 वर्ष पूर्व बम्बई के सिन्धी साहित्यकारों और कलाकारों ने सिन्धी भाषा, साहित्य, कला, सभ्यता एवं संस्कृति को जीवित रखने के लिए जो प्रारम्भिक प्रयास किए थे, और आज तक कर रहे हैं, वे भुलाने योग्य नहीं हैं.... अब दिल्ली की सिन्धी जनता, कुम्भकर्णी निद्रा से जागृत हुई है.... उसमें उत्साह जागृत हुआ है।"

सिन्धी समुदाय द्वारा आयोजित सभाओं में प्रोफ़ेसर मल्काणी द्वारा दिए गए भाषणों का उल्लेख करते हुए लेखक महोदय आगे लिखते हैं- "प्रोफ़ेसर एम.यू. मल्काणी ने एशियाई लेखक सम्मेलन में अन्य भाषा-भाषी साहित्यकारों पर सिन्धी साहित्य के प्रभाव और अपने अनुभवों का वर्णन करते हुए आशा व्यक्त की, कि हमें संगठित होने और अपने या अपने बच्चों के मन में सिन्धी भाषा के प्रति प्रेम जागृत करने से अन्ततः किसी दिन हम सिन्धी भाषा को भारत के संविधान में सम्मिलित कराने में सफल होंगे।"

और वह सफलता उस एशियाई लेखक सम्मेलन के पूरे दस वर्षों बाद मिली। उसके लिए प्रथम प्रयास 1957 के दिसम्बर माह में दिल्ली में हुए सिन्धी बोली सम्मेलन से आरम्भ हुआ था। उसके बाद बम्बई में 1958 में, और नागपुर में 1959 में सिन्धी साहित्य सम्मेलन हुए। नागपुर सम्मेलन की साहित्यिक बैठक के अध्यक्ष थे प्रोफ़ेसर मल्काणी। सब से अधिक महत्वपूर्ण बात उस सम्मेलन में यह हुई कि प्रथम बार सिन्धियों की एक केन्द्रीय संस्था "अखिल भारत सिन्धी बोली ऐं साहित सभा" (अखिल भारत सिन्धी बोली और साहित्य सभा) का जन्म हुआ। इस सभा के महासचिव (जनरल सेक्रेटरी) भी, सिन्धी साहित्य मण्डल (बम्बई) के तत्कालीन महासचिव श्री ए.जे. उत्तम नियुक्त हुए, जिनके लिए प्रोफ़ेसर मल्काणी से विशेष विचार-विमर्श किया गया था। दूसरे वर्ष गांधीधाम सम्मेलन के समय भी उस सभा के वे ही महा सचिव और अध्यक्ष प्रोफ़ेसर मल्काणी चुने गए। इस सम्मेलन की अध्यक्षता भी उन्होंने ही (प्रो. मल्काणी) की।

उस गांधीधाम सम्मेलन में प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में सिन्धी भाषा की मान्यता के अतिरिक्त सिन्धी शिक्षा, साहित्य और संस्कृति की समस्याओं को सुलझाने पर भी बल दिया तथा विशेषताः सिन्धी अभिभावकों के मन में सिन्धी भाषा के लिए प्रेम उत्पन्न करने का सन्देश दिया। इस कार्य के लिए उन्होंने अखिल भारत सिन्धी बोली और साहित्य सभा को ही उपयुक्त संस्था समझा और कहा कि "उसे अथक प्रयास करने होंगे।" *

सभा सचमुच पांच छः वर्षों तक अत्यधिक प्रयत्नशील रही। फलतः भारत सरकार ने सिन्धी भाषा को भारतीय संविधान में सम्मिलित कर लिया। प्रोफ़ेसर मल्काणी की अध्यक्षता के आरम्भिक वर्ष में ही अखिल भारत सभा ने सम्पूर्ण भारत में "चेटी चण्ड दिवस" को सिन्धियत दिवस के रूप में मनाने का आह्वान किया, जो आज तक भारत के कोने-कोने में फैले सिन्धी लोग मनाते आ रहे हैं।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने सिन्धी साहित्य मण्डल की अध्यक्षता के दिनों में न केवल साहित्य एवं भाषा का, अपितु सांस्कृतिक आंदोलन का भी मार्गदर्शन किया। मण्डल के वार्षिक सम्मेलनों में सिन्धी गीत, संगीत, नाटक तथा नृत्य के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते थे। परन्तु बाद में उन कार्यक्रमों की बढ़ती मान्यता एवं महत्व को अनुभव करते हुए मण्डल के कार्यकर्ताओं ने सिन्धी कलाकारों की दो नई संस्थाएं स्थापित कीं। एक, 'सिन्धी कलाकार मण्डल' 1959 में और दूसरी 'सिन्धु कला मन्दिर' 1960 में, ये दोनों संस्थाएं आज भी कार्यरत हैं।

परन्तु जब सिन्धियत के मुख्य केन्द्र बम्बई में हमारा साहित्यिक-सांस्कृतिक तथा रहन-सहन सम्बन्धी आंदोलन तीव्रता से आगे बढ़ रहा था, जिसके लिए उस समय प्रोफ़ेसर मल्काणी के संरक्षण की नितान्त आवश्यकता थी, तब वे प्रोफ़ेसर के पद से सेवा निवृत्त होकर 1962 में कलकत्ता में रहने लगे।

इतना होने पर भी उन्होंने न केवल कलकत्ता में सिन्धियत आंदोलन को बढ़ावा दिया, बल्कि बम्बई के साहित्यकारों, कलाकारों तथा अन्य साथियों से भी पत्र व्यवहार के माध्यम से, और कभी-कभी बम्बई आकर सम्पर्क बनाए रखा तथा उनका मार्गदर्शन भी वे करते रहे।

वास्तव में प्रोफ़ेसर मल्काणी ने बम्बई के सिन्धी समुदाय की ओर से आयोजित विदाई समारोह में, समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा था कि वे जीवन भर सिन्धी भाषा की सेवा करते रहेंगे। प्रिन्सीपल एल. एच. अजवाणी की अध्यक्षता में आयोजित उस समारोह में बोलते हुए प्रोफ़ेसर मल्काणी ने कहा था -"यह मेरे लिए दूसरी बार जड़ से उखड़ने के समान होगा। मेरे विचार से हर मनुष्य की तीन माताएं होती हैं। एक, जो जन्म देती है, वह बहुत समय पूर्व ही मुझे छोड़ गई थी। दूसरी, जन्मभूमि, जिसे छोड़ना कठिन होता है, पर उसे भी सदा के लिए हमें छोड़ना पडा। और तीसरी सबसे महत्वपूर्ण है मातृभाषा। अब यही एक मां रह गई है जिसकी सेवा ताजिन्दगी करना चाहता हूं। **

---

* 'हिन्दुस्तान' रोज़ानी 30 अक्टूबर 1960

* 'सिन्धु धारा' साप्ताहिक 22 अप्रेल 1962

सचमुच प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अपने अन्तिम समय तक अपनी मातृभाषा की सेवा की। जैसे ही वे बम्बई से कलकत्ता गए तो वहां पर सिन्धियत के आंदोलन का मार्गदर्शन करने के साथ-साथ वहां साहित्यकारों से प्राप्त अनेक पुस्तकों पर समालोचनाएं तथा आलोचनाएं भी उन्होंने लिखीं। साथ-साथ सिन्धी पत्र-पत्रिकाओं म प्रकाशित कुछ असत्य अथवा अस्वस्थ बातों पर भी वे अपने विचार व्यक्त करते रहे, या उन्हें उन बातों का खण्डन लिखकर भेजते रहे। अनेक साहित्यकारों के साथ पत्र व्यवहार के माध्यम से न केवल उनकी रचनाओं से सम्बन्धित बल्कि साहित्यिक तथा सिन्धीयत के आंदोलन संम्बन्धी विचारों का आदान-प्रदान भी करते रहे। हां, इस अवधि में यह भी हुआ कि प्रोफ़ेसर मल्काणी पर बीमारियों के कई अत्यन्त भयंकर आक्रमण भी हुए। उस अवधि में अपनी लिखी गई हर रचना को वे अपनी अन्तिम रचना ही कहते थे। जैसा कि उन्होंने ''नई दुनिया'' के मई 1968 के अंक में प्रकाशित अपने एक लेख में,1975 में प्रकाशित एकांकी संग्रह ''आखरीन भेट'' (अन्तिम भेंट) में तथा 1979 में प्रकाशित ''समुंड जी गजिकार'' संग्रह में लिखी अपनी भूमिकाओं मे
भी लिखा था। इससे स्पष्ट है कि प्रोफ़ेसर मल्काणी पूरे दस-बारह वर्षों तक बीमारियों से जूझते हुए वृद्धावस्था में भी लेखनी चलाते ही रहे तथा साहित्यकारों का मार्गदर्शन भी करते रहे। अन्तिम समय श्रवणशक्ति क्षीण हो जाने तथा हृदय रोग से पीड़ित होने के उपरान्त भी वे अगस्त 1980 में बम्बई के साहित्कारों एवं साथियों से हार्दिक विचार-विनिमय (अन्तिम बार) करने और अपनी अलोचनाओं एवं समालोचनाओं के संग्रह ''भारत में सिन्धी साहित जो मुख़्तसिर जायज़ो'' (भारत में सिन्धी साहित्याका संक्षिप्त अध्ययन) का विमोचन अपने ही हाथों से करने के लिए बम्बई आए थे।

सितम्बर 1980 सिन्धु कला मंदिर (बम्बई) की ओर से आयोजित नाटक शताब्दी के अवसर पर उनका अभिनन्दन किया गया। उस समय उन्हें दिये गए मानपत्र में ''आधुनिक एकांकी के जन्मदाता'' और ''बटवारे के बाद सिन्धी भाषा की उन्नति के एक वयोवृद्ध मार्गदर्शक'' कहकर उन्हें सम्बोन्धित किया गया। दिल्ली में उस अवसर पर ''सिन्धु कला संगम'' की ओर से आयोजित सम्मान समारोह में, अस्वस्थता के कारण वे शामिल नहीं हो सके।

बम्बई में अपने निवास के अन्तिम समय तक प्रतिदिन वे साहित्यकारों से हार्दिक विचार-विनिमय करते रहे तथा सिन्धी पुस्तकें एवं पत्र-पत्रिकाएं पढ़कर अपने विचार व्यक्त करते रहे।

अन्ततः, 84 वर्ष की अवस्था में भी लेखनी चलाते हुए, 1 दिसम्बर 1980 को उनकी आत्मा परमात्मा में लीन हो गई। इस प्रकार सिन्धी आन्दोलन के शूरवीर पथप्रदर्शक सदा के लिये चिर निद्रा में विलीन हो गये।

अध्याय 12
सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व

प्रोफ़ेसर मल्काणी अत्युत्तम एवं आकर्षक व्यक्तित्व ने स्वामी थे। वे डील-डौल के सुन्दर तथा सादगी, स्वाभिमान तथा सहनशीलता की मूर्ति थे। उन्होंने, एक उच्च सामन्त घराने के जमींदार परिवार में जन्म लिया था और ऐसे परिवार के सदस्य ऐषो-आराम की जिंदगी जीते थे। जहां का रहन-सहन अत्यन्ताकर्षक था। तथापि उन्होंने अपने पारिवारिक बड़प्पन तथा आडम्बर का आभास तक नहीं होने दिया। वेशभूषा और व्यवहार में सीधे-सादे तथा स्पष्ट रहे। राष्ट्रीय आंदोलन के समय कॉलेज में 'टाई' और 'फुल सूट' पहनना छोड़कर बन्द गले का कोट वाला साधारण पहनावा आरम्भ कर दिया जो वे अन्तिम समय तक पहनते रहे। विदेश यात्रा में भी उनकी यही वेशभूषा थी।

वे छोटे-बड़े और जाति-पांति के भेदभाव से तो सर्वथा दूर ही थे। इस कारण जब कॉलेज के समय हैदराबादी और गैरहैदराबादी विद्यार्थीयों के बीच अत्याधिक वैर-भाव होता था तब स्वयं हैदराबादी होते हुए भी गैर हैदराबादी श्री. एल्.एच. अजवानी से मित्रता की तथा उस वैर भावना को दूर करने के सदा प्रयास करते रहे। वे समानता तथा समान व्यवहार के सर्वथा पक्षधर थे। इसी कारण से अपने विद्यार्थीयों के साथ भी कॉलेज से बाहर वे मित्रवत व्यवहार ही करते थे। उन्होंने अपने से छोटी उम्र के लेखकों के साथ भी वे समवयस्क बन कर, विचार-विमर्श करते थे। मुझसे लगभग तीस वर्ष बड़े होते हुए भी मुझे अपना मित्र कहते थे। और विचार-विमर्श भी करते थे। प्रोफ़ेसर मल्कानी के इस व्यवहार पर कुछ वयोवृद्ध साहित्यकारों को आश्चर्य भी होता था, तथा इस कारण उनकी लोकप्रियता पर उन्हें ईर्ष्या भी होती थी।

वस्तुतः प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अपने व्यक्तित्व पर किसी भी प्रकार से जमींदारी स्वभाव का लेश मात्र भी प्रभाव नहीं पड़ने दिया। उन्होंने न केवल स्वयं को अमोद-प्रमोद से दूर रखा बल्कि वे सदा मितव्ययिता से ही जीवन यापन करते रहे। यहां तक कि अपनी नाटक-कलाकी प्यास बुझाने के लिए हर एक फिल्म देखते भी थे तो सस्ते दर का टिकट लेकर। फिर चाहे वे प्रोफ़ेसर का पद ही क्यों न रखते हों। सिगरेट भी पीते थे तो स्स्ते मूल्य वाली। नयी-नयी पुस्तकें क्रम करते थे तो भी सस्ते संस्करणों वाली। परन्तु यदि वे मंहगी होतीं तो उनके स्थान पर पुरानी पुस्तकों की दुकानों से ढूंढ-ढूंढ कर वहीं पुरानी पुस्तकें खरीद लाते थे। तात्पर्य यह कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे कम-से-कम खर्च करना चाहते थे। इस कारण यदि उन्हें कुछ थोड़ा बहुत कष्ट भी झेलना पड़ता तो भी वे सहन करते थे। वे कहते थे कि, "यदि गंजी है, तो सर्दी है....." पर इस सहनशीलता के लिए यदि उन्हें कुछ अधिक परिश्रम भी करना पड़े तो भी वे सहर्ष करते थे, ताकि कहीं भी उन्हें अपने स्वाभिमान के साथ समझौता तो नहीं करना पड़े। अपने पिता के जीवनकाल में ही वें परिश्रम कर अपनी उदरपूर्ति

---

* 'नई जिन्दगी' पत्रिका दिसम्बर 1951

स्वयं ही करने लगे थे। पिता की कमाई या सम्पति पर उन्होंने कभी आंख नहीं रखी।

एक कलाकार होने के नाते प्रोफ़ेसर मल्काणी ने एक प्रेमी हृदय पाया था। वे बचपन से ही भावुक प्रकृति के थे। उन्होंने न केवल नाट्य रंगमंच पर भावनात्मक भूमिकाएं निभायी बल्कि जीवन के खेल में भी उन्होंने बहुतसे प्रेम - सम्बन्ध स्थापित किए थे। उन्होंने अपने जीवन के इस पक्ष को उजागर करते हुए एक लेख में लिखा हैं, ''शेक्स्पीयर, शैली और टैगोर की भांति मैंने भी प्रेम और पीड़ा के प्रभावाधीन लिखना आरम्भ किया। परन्तु वह प्रियतम कौन था? 1914 में कराची कालेज में एफ़. वायू. का अध्ययन करने मै गया था। सौभाग्य वश वह पहला ही वर्ष था जब कि कॉलेज मे सह-शिक्षा आरम्भ हुई थी। अर्थात हमारी कक्षा में लड़के-लड़कियां एक साथ विद्याध्ययन करने लगे थे। लेकिन तीन सौ लड़कों में लड़कियां केवल तीन ही थी। इस कारण सफलता की आशा बहुत कम ही होती थी। तथापि बड़ी बात तो यह थी कि उस आरम्भिक समय में लड़के-लड़कियों के मिलने-जुलने पर इतने प्रतिबन्ध होते थे, कि आज की महाविद्यालयीन स्थितियों को देखकर ईर्ष्या सी होने लगती है.... पर बचपन से ही जो रसिकता पायी हो, तो उससे भला कब तक अछूता रहा जा सकता है? कहीं तो वह घुटन फूटकर बाहर निकलेंगी! फिर, यहां नहीं तो वहां। प्राकृतिक रूप से भिन्न लैंगिक जाति से प्रेम बांटने के द्वारा यदि बंद थे, तो समलैंगिक जाति से प्रेम व्यवहार पर तो प्रतिबन्ध नहीं था। इस कारण उस समय ऐसी प्रथा होती थी कि गभरू युवक एक दूसरे से प्रेमपूर्ण मित्रता करते थे। बल्कि कितनेही अध्यापक तथा प्रोफ़ेसर भी सुन्दर मुखाकृति वाले अपने मित्रों कि मित्रता से मन को तृप्त करते थे, जिनमें कुछ को तो काम-वासना का ज्ञान भी नहीं होता था। स्वयं मेरे ही एक अध्यपक मुझसे पवित्र प्यार करते थे और वे अभी तक मेरे मित्र हैं। फिर यदि मैंने भी एक सुन्दर मित्र से प्रेम किया तो क्या बुरा किया? .....मुझे तो आज भी इस अधेड़ावस्था में उसकी मधुर स्मृतियां हैं..... *

उक्त प्रेम-सम्बध को प्रोफ़ेसर मल्काणी ने एक अन्य लेख में इस प्रकार व्यक्त किया है: ''उसी वर्ष छुट्टियों में हैदराबाद आया था तो अपने पुराने हाई स्कूल के व्यवस्थापकों ने दबाव डाला कि 'हमारे विद्यालय के नववर्ष के समारोह के अवसर पर एक पुराने विद्यार्थी के रूप में, कोई हास्यपूर्ण अभिनय प्रस्तुत करो.....' बड़े उत्साह से अभिनय आरम्भ किया। पर मेरा ध्यान जाकर अटका दर्शक समूह में, जहां मेरी आंखें एक-एक पंक्ति में अपने उस मित्र को ढूंढ़ने लगीं, जिसके साथ कॉलेज में नया-नया प्रेम हुआ था और जिसे मैंने अपनी सफलता दिखाने के लिए आमन्त्रित किया था। परन्तु उस जनमसुह में उस सुन्दर आकृति को न पाकर मैं असमंजस में पड़ गया, मेरा साहस टूट गया। अभिनय से ध्यान हट गया..... संवाद भूल गया, सो हिचकते हुए उदास मन से निर्लज्ज होकर अन्दर लौट आया, तो पीछे से सीटियां बजाने और चिल्लाने की धून मच गई। अपना विश्वास भी मैंने खो दिया तथा पुराने स्कूल की दुर्गति भी कराई। श्री नेभराज कृपलाणी से कॉलेज के प्रथम प्यार का मैंने अत्याधिक मूल्य चुकाया.... ।''*

प्रोफ़ेसर मल्काणी का प्रेम केवल पुरुष जाति तक सीमित नहीं था । उनकी भावनात्मक प्रकृति स्त्री जाति के लिए अधिक उत्सुक थी, जैसा कि ''जवानीअ जा जज़िबा, पीरीअ जूं यादियूं'' पुस्तक से भी स्पष्ट है । युवावस्थके समय की एक ऐसी ही प्रियतमा को प्रेमकथा

---

* 'सैना' पत्रिका, नवम्बर-दिसम्बर 1957

जनित अपनी तीन एकांकियों का संग्रह ''समुंड जी गजिकार'' समर्पित कर उन्होंने उसे अमर कर दिया है । 1979 में प्रकाशित इस पुस्तक से तो यही लगता है कि प्रोफ़ेसर मल्काणी ने अपनी उस प्रियतमा के प्रेम को अन्तिम समय तक नहीं भुलाया था। शायद इस रसिक स्वभाव के कारण ही उन्होंने अपनी सम्पूर्ण आत्मकथा नहीं लिखी, जैसा कि उन्होंने अपनी भतीजी श्रीमती रीटा शहाणी को अपने देहान्त से केवल एक माह पूर्व ही आत्मिक विचार-विनिमय के समय बताया था। वे लिखती हैं, ''मैंने उनसे पूछा था, आपने अपनी आत्मकथा क्यों नहीं लिखी? उत्तर दिया- 'कई लोगों ने मुझे कहा कि लिखो, और मैं लिख भी सकता था, पर मैंने नहीं लिखी। जनती हो, मैंने चार बार प्रेम किया था!' तब मैंने अनुभव किया कि दादा (चाचाजी) के जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष प्रेम ही था। **

वास्तव में प्रोफ़ेसर मल्काणी के व्यक्तित्व को आकर्षक बनाने में प्रेम ने सचमुच महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। किन्तु उनका प्रथम तथा अन्तिम प्यार अध्ययन से था, कई-कई दिन और कई-कई रातें पुस्तकों के पृष्ठ पलटने से वे नहीं चूकते थे । आश्चर्य तो इस बत का है कि जो भी पुस्तकें वे लेते थे और जो उनके पास आती थीं, उन सबकी सब पुस्तकों को वे न केवल पढ़ते थे बल्कि उन पर चिह्न लगाकर अपने वे विचार भी लिख देते थे। कई बार तो लेखकों को भी अपने विचार लिख भेजते थे और कुछ विचारों को समालोचना अथवा आलोचना के रूप में प्रकाशित भी करवाते थे। प्रोफ़ेसर मल्काणी उन पुस्तकों की अच्छाइयों को खुले हृदय से सराहते थे तो कमियों की भी अनदेखी नहीं करते थे।

वस्तुत: प्रोफ़ेसर मल्काणी पुस्तकों का उचित प्रकार से उपयोग करने की कला जानते थे।वे स्वयं उन से आनन्द और ज्ञान प्राप्त करने के साथ, वही ज्ञान दूसरों को भी बांटते थे। सत्य तो यह है कि उन्होंने जीवन का पूरा-पूरा आनन्द उठाना चाहा था। श्रीमती रीटा शहाणी उस क्रम में लिखती है कि-''एक बार मैंने उन्हें (प्रो. मल्काणी को) डाक्टर खूबचन्दाणी को कहते हुए सुना था कि-''मैं इन सुस्वाद दुर्व्यसनों (सिगरेट और विस्की) को छोड़ नहीं सकता। उनका स्वाद लेकर फिर गोलियां खाकर सो जाता हूं। *

ऐसा नहीं है कि सिगरेट या विस्की सचमुच उनके लिए कोई दुर्व्यसन थे। परन्तु प्रोफ़ेसर मल्काणी उनका केवल पूरा-पूरा आनन्द उठाना चाहते थे। हम लेखकों नें वर्षों के वर्ष उन्हें सिन्धी साहित्य मण्डल की साप्ताहिक साहित्यिक गोष्ठियों में सिगरेट ही नहीं बल्कि छोटी सी पतली हिन्दुस्तानी बीड़ी भी पीते देखा था। वे उस से भी पूरा आनन्द उठाते थे और तब तक नहीं फैंकते थे जब तक वह पूरी समाप्त होकर उनकी अंगुलियां न जलने लगें।

प्रोफ़ेसर मल्काणी ने इस मण्डल की अध्यक्षता के समय, हम लेखकों को, आनन्द उठाने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों के जितने भ्रमण कराए उतने शायद हमने अपने जीवन में भी नहीं किए होंगे। स्वयं प्रोफ़ेसर मल्काणी तो अन्तिम समय तक ऐसे भ्रमण, विशेषतया पहाड़ी स्थलों के करते ही रहे। देहान्त से एक माह पूर्व महाबलेश्वर की सैर

** 'रचना' त्रैमासिक पत्रिका, जनवरी-मार्च 1982

* 'रचना' त्रैमासिक पत्रिका जनवरी-मार्च 1982.

करने के लिए कार में जा रहे थे कि पहाड़ी रास्ते पर कहने लगे -''गाड़ी भले ही धीरे-धीरे चलाओं, मैं रास्ते के हर ईंच का आनन्द उठाना चाहता हूं।''*

इस से स्पष्ट है कि प्रोफ़ेसर मल्काणी जीवन को आनन्द उठाने का साधन ही मानते थे। इस कारण ही वे सुखदर्शी (आशावादी) थे। सिन्धी साहित्य मण्डल में व्यक्त तथा अपने प्रकाशित विचारों में वे अपने सुखदर्शी स्वभाव का वर्णन करते रहते थे। उन्होंने दु:खी और निराशावादी विचारों का सदा विरोध किया और अन्त तक किया। उनकी भतीजी रीटा शहाणी ने अपने संस्मरणों में ऐसी ही, अन्तिम एक घटना का वर्णन करते हुए लिखा है-''मैंने बैठे-बैठे कविता की दो पंक्तियां लिखीं और दादा (प्रो. मल्काणी) को दिखाई:-

विवशता से मुझे भगवान तुम बचाना,
पराश्रित होने से पहले जग से उठा लेना।

बस, क्रोधित हो उठे। कहने लगे -'मुझे देखकर यह कविता लिख रही हो? कौन कहता है कि मै विवश हूं? मृत्यु की बात तो उस से की जाती है जो मरने वाला होता है। मैं मरने वाला थोड़े ही हूं!*

और सचमुच प्रोफ़ेसर मंघाराम उधाराम मल्काणी जैसा महान व्यक्तित्व और साहित्यिक अस्तित्व कभी मर नहीं सकता। यह सुखदर्शी सपूत, सिन्धी जाति के लिए सदा प्रकाश-स्तम्भ बनकर रहेगा।

** 'रचना' त्रैमासिक पत्रिका, जनवरी-मार्च 1982